निर्णय एवं लैंगिकता

(न्यायिक निर्णयों के लेखन में संवेदनशीलता एवं करुणा)

निर्णय एवं लैंगिकता

(न्यायिक निर्णयों के लेखन में संवेदनशीलता एवं करुणा)

विषय–सूची

- संदर्भ एवं पृष्ठभूमि 1
- भारत में लैंगिक न्यायशास्त्र 10
- पीड़ित को दोषी ठहराने के विरुद्ध विधिक संरक्षण 19
- प्रतिपरीक्षण एवं यौन इतिहास 20
- न्यायिक संवेदनशीलता में विरोधाभासः प्रगतिशील दृष्टिकोण एवं विद्यमान पूर्वाग्रह 21
- रूढ़िबद्ध धारणाओं के विरुद्ध नियमः लैंगिक न्यायपूर्ण समाज की ओर संक्रमण 25
- निर्णयों में लैंगिक/रूढ़िबद्ध भाषा एवं उसके विकल्प 28
- न्यायालयों की संवेदनशील एवं सहानुभूतिपूर्ण कार्यप्रणाली 35
- विचारणीय बिंदु 40

परिशिष्ट

- न्यायालयीन कार्यवाही के संबंध में प्रतिक्रिया हेतु प्रश्नों पर रिपोर्ट I
- महिला पीड़िताओं/यौन उत्पीड़न एवं अन्य अपराधों से प्रभावित महिलाओं के लिए प्रतिकर योजना – 2018 II

संदर्भ एवं पृष्ठभूमि

जब से लिखित भाषाएँ हमारी सभ्यता का हिस्सा बनी हैं, तब से उन्होंने व्यापक जनसमुदाय तक अपने विचारों को लिखित रूप में अभिव्यक्त करने में हमारी सहायता की है। किंतु समाज के विशेषाधिकार प्राप्त समूहों ने भाषा को सशक्तीकरण के साधन के साथ–साथ समाज में अपनी उच्च स्थिति बनाए रखने के लिए अवमानना के साधन के रूप में भी उपयोग करने के तरीके खोज लिए हैं। वर्ष 1492 में मुद्रण यंत्र के आविष्कार के बाद भाषा की महत्ता और प्रभाव अत्यधिक बढ़ गया तथा डिजिटलकरण के साथ इसकी पहुँच और शक्ति में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। इन विकासों के साथ मानवीय विचार दूर–दूर तक पहुँचने लगे हैं। प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक पदानुक्रम में गहराई से विद्यमान पूर्वाग्रह भी संचार के आधुनिक माध्यमों के द्वारा दूरस्थ स्थानों तक पहुँचने लगे हैं।

लैंगिकता विश्व के सभी विद्यमान समाजों में भेदभाव और अवमानना के मूलभूत स्रोतों में से एक है। किंतु जहाँ भेदभाव होता है, वहाँ उसका प्रतिरोध करना मानवीय स्वभाव की स्वाभाविक प्रतिक्रिया है और इसी प्रकार के प्रतिरोध ने अनेक सुधार आंदोलनों को जन्म दिया है, जिसकी पुष्टि इतिहास करता है। प्रतिरोध की इस प्रक्रिया में विधिक व्यवस्थाएँ प्रायः महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। न्यायाधीशों ने इस समस्या को संबोधित करते हुए विभिन्न प्रकार से अपने विचार व्यक्त किए हैं और कुछ विशिष्ट शब्दों अथवा अभिव्यक्तियों का प्रयोग हमें लैंगिक विवादों के संबंध में समाज के समग्र दृष्टिकोण को समझने और उसका आकलन करने में सहायता करता रहा है।

पिछली शताब्दी के 1950 और 1960 के दशकों में विश्वभर के न्यायालयों में लैंगिक मुद्दों के साथ–साथ जाति, रंग और वर्ग से संबंधित विवाद भी प्रमुखता से सामने आए। वास्तव में, 19वीं शताब्दी से ही लैंगिक प्रश्न राजनीतिक विचारकों और सामाजिक सुधारकों के विमर्श का विषय रहे हैं, किंतु उस समय यह मुख्यतः पुरुषों और महिलाओं के बीच द्विआधारी विवाद तक सीमित था। हालांकि, 20वीं शताब्दी के मध्य से यौन

विमर्श द्विआधारी सीमाओं से आगे बढ़ गया और खुले मंचों पर चर्चा का विषय बनने लगा। कार्यस्थलों पर महिलाओं की बढ़ती उपस्थिति ने भी विभिन्न प्रकार के शोषण को जन्म दिया, जिनसे निपटने के लिए न्यायालयों को हस्तक्षेप करना पड़ा। इसके परिणामस्वरूप मुख्यतः न्यायालयों के माध्यम से सहानुभूति और अधिकार–आधारित दृष्टिकोण को समाहित करने वाला एक नया न्यायशास्त्र विकसित हुआ। विशाखा, नर्गेश मिर्ज़ा, गीता हरिहरन और नाज़ फाउंडेशन से संबंधित मामले माननीय सर्वोच्च न्यायालय के ऐसे महत्वपूर्ण निर्णय हैं, जो इस नए न्यायशास्त्र के भारतीय विधिक व्यवस्था में समावेश को प्रतिबिंबित करते हैं।

लैंगिक न्यायशास्त्र के विकास के दौरान प्रारंभ में जिस चुनौती का पर्याप्त अनुमान नहीं लगाया गया था, वह थी शिकायतकर्ता की पीड़ित के रूप में भूमिका। लैंगिक संबंधी मामलों में संवेदनशील और सहानुभूतिपूर्ण न्यायिक दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है। विशेष रूप से यौन अपराधों के आरोपों से संबंधित मामलों में, विचारण के दौरान खुले न्यायालय में अपराध की घटना का चित्रात्मक एवं विस्तृत वर्णन अक्सर पीड़िता को पुनः आघात पहुँचाता है और उसे उस घटना को खुले मंच पर पुनः अनुभव करने के लिए विवश करता है। दुर्भाग्यवश, यौन हमला अभी भी एक अलग प्रकार के अपराध के रूप में देखा जाता है और अनेक मामलों में यह सुप्त पूर्वाग्रह अभी भी विद्यमान है कि किसी न किसी रूप में पीड़िता भी अपराध में सहभागी रही होगी। यही कारण है कि विचारण के दौरान बचाव पक्ष का अधिवक्ता प्रायः पीड़िता की वेशभूषा, उसके सामान्य स्वरूप तथा अपराध के समय और स्थान जैसे पहलुओं को उजागर करने का प्रयास करता है।

इस प्रकार के अपराध की महिला पीड़िता को प्रतिपरीक्षण का सामना करना पड़ना अक्सर उसके द्वारा शिकायत दर्ज कराने में निरुत्साह पैदा करता है। किसी निर्णय में अपराध की घटना का चित्रात्मक वर्णन पीड़िता के आघात को और बढ़ा देता है। ऐसे मामलों में आपराधिक न्याय प्रणाली में सहानुभूति का होना अत्यंत आवश्यक है। समाजशास्त्रियों के अनुसार सहानुभूति की क्षमता एक अंतर्निहित गुण है, किंतु जागरूकता और अभ्यास के माध्यम से इसे विकसित किया जा सकता है। सभी स्तरों और सभी संवर्गों में संवेदनशीलता तथा सहानुभूति विकसित करने के लिए न्यायाधीशों को मूल विधियों के प्रशिक्षण के साथ–साथ

व्यवहार–कौशल (Soft Skills) का प्रशिक्षण भी दिया जाना आवश्यक है। न्यायिक कार्यों के निर्वहन में भावनात्मक बुद्धिमत्ता (Emotional Quotient) को बौद्धिक बुद्धिमत्ता (Intelligent Quotient) का पूरक बनाना होगा।

Suo Motu Writ Petition Criminal No- 1/2025 में भारत के माननीय मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति सूर्यकांत की अध्यक्षता वाली पीठ, जिसमें न्यायमूर्ति जॉयमाल्य बागची और न्यायमूर्ति एन. वी. अंजारिया शामिल थे, ने एक उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के आधार पर स्वतः संज्ञान लेते हुए कार्यवाही प्रारंभ की। उक्त मामले में भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 376 तथा लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 (POCSO) की धारा 18 के अंतर्गत अपराध किए जाने के आरोप शामिल थे। उच्च न्यायालय के आदेश में कथित अपराध का कुछ चित्रात्मक वर्णन किया गया था। उच्च न्यायालय ने समन संबंधी आदेश में संशोधन करते हुए आरोपों को भारतीय दंड संहिता की धारा 354ख तथा लैंगिक अपराधों से बच्चों का संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 9 एवं 10 के अंतर्गत अपेक्षाकृत कम गंभीर आरोपों में परिवर्तित कर दिया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय 10 फरवरी 2026 को सुनाया गया।

उच्च न्यायालय के आदेश पर गुण–दोष के आधार पर विचार करने के पश्चात् माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित निर्देश दिए:

17. सुश्री गुप्ता और श्री फूलका, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ताओं ने, आक्षेपित निर्णय में विद्यमान विधिक त्रुटियों की ओर इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित करने के अतिरिक्त, उस नाबालिग बालिका की स्थिति के प्रति आक्षेपित निर्णय में प्रदर्शित असंवेदनशीलता पर भी इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित करने का आग्रह किया है, जिसके यौन अपराधों की पीड़िता होने का आरोप है। उनका कहना है कि न्यायपालिका के विभिन्न स्तरों पर ऐसे अनेक उदाहरण सामने आए हैं, जहाँ न्यायाधीशों और न्यायिक अधिकारियों ने यौन अपराधों से संबंधित मामलों

से निपटने के दौरान करुणा और सहानुभूति को अपने दृष्टिकोण में समाहित करने में असफलता दिखाई है, विशेष रूप से तब, जब पीड़ित और साक्षी संवेदनशील और/या नाबालिग हों। इसी संदर्भ में, पक्षकारों के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ताओं/अधिवक्ताओं ने इस न्यायालय से ऐसे कुछ दिशा–निर्देश निर्धारित करने का अनुरोध किया है, ताकि भविष्य में इस प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होने से रोकी जा सकें।

18. हमारे समक्ष उठाए गए मुद्दों में हमें कुछ सार दिखाई देता है। न्यायिक व्यवस्था, एक समन्वित एवं सुसंगठित ढाँचे के रूप में, उन नागरिकों को न्याय और संतुष्टि प्रदान करने के लिए बनाई गई है, जो अपनी शिकायतों के निवारण के लिए इसके समक्ष आते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमारे प्रयास न केवल संवैधानिक और विधिक सिद्धांतों के सुदृढ़ अनुप्रयोग पर आधारित होने चाहिए, बल्कि उनमें करुणा और सहानुभूति का वातावरण भी विकसित होना चाहिए। इन दोनों आधारभूत तत्वों में से किसी एक का भी अभाव न्यायिक संस्थाओं को उनके महत्वपूर्ण कर्तव्यों का उचित निर्वहन करने से रोक देगा।

19. किसी भी न्यायाधीश अथवा किसी न्यायालय के किसी निर्णय से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह तब पूर्ण न्याय करेगा, जब वह वादकारी की वास्तविक परिस्थितियों और उन कमजोरियों के प्रति असंवेदनशील हो, जिनका सामना उसे न्यायालय की शरण लेने में करना पड़ सकता है। विधिक प्रक्रिया में सहभागी के रूप में हमारे निर्णयकृसामान्य नागरिकों द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया निर्धारित करने से लेकर किसी मामले में अंतिम निर्णय पारित करने तक करुणा, मानवता और समझ की उस भावना को प्रतिबिंबित करने चाहिए, जो एक निष्पक्ष और प्रभावी न्याय व्यवस्था के निर्माण के लिए आवश्यक हैं।

20. इसमें कोई संदेह नहीं है कि न्यायपालिका के सदस्यों के दृष्टिकोण तथा संबंधित न्यायालयीन प्रक्रियाओं में अंतर्निहित संवेदनशीलता और विवेकशीलता को विकसित एवं पोषित करने के लिए कुछ कदम उठाए जाने आवश्यक हैं। इस दिशा में इस देश के संवैधानिक न्यायालयों द्वारा समय–समय पर न्यायिक तथा प्रशासनिक दोनों स्तरों पर विभिन्न कदम उठाए गए हैं। हालांकि, ऐसा प्रतीत होता है कि अब तक किए गए प्रयासों से अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हुए हैं।

21. ऐसी स्थिति में, हम इस चरण पर बिना किसी व्यापक समझ के नए और दिशाहीन प्रयास के रूप में दिशा–निर्देश निर्धारित करने से संकोच करते हैं। इसके लिए विभिन्न संवैधानिक और वैधानिक निकायों द्वारा पूर्व में किए गए ऐसे प्रयासों, उन प्रयासों के वास्तविक धरातल पर प्राप्त परिणामों तथा इसी प्रकार के संवेदनशील मामलों में पीड़ितों और शिकायतकर्ताओं के सामने आने वाली विभिन्न प्रकार की समस्याओं का समग्र अध्ययन आवश्यक है। विभिन्न विषय–विशेषज्ञों के मूल्यवान विचार और सुझाव प्राप्त किए बिना भी ऐसा प्रयास नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि हमारे न्यायिक अनुभव में ऐसे विचार सामान्यतः केवल वाद–विवाद संबंधी कार्यवाहियों से स्वतः प्राप्त नहीं होते।

22. इस उद्देश्य से हम राष्ट्रीय न्यायिक अकादमी, भोपाल से, इसके निदेशक एवं इस न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश न्यायमूर्ति अनिरुद्ध बोस के माध्यम से, विशेषज्ञों की एक समिति गठित करने का अनुरोध करते हैं। विशेषज्ञ समिति की अध्यक्षता न्यायमूर्ति बोस करेंगे और इसमें चार अन्य विषय–विशेषज्ञ सदस्य होंगे, जिनमें विधि–व्यवसायी, शिक्षाविद् और सामाजिक कार्यकर्ता शामिल हो सकते हैं।

23. हम विशेषज्ञ समिति से 'यौन अपराधों और अन्य संवेदनशील मामलों के संदर्भ में न्यायाधीशों और न्यायिक प्रक्रियाओं में संवेदनशीलता एवं करुणा विकसित करने हेतु दिशा–निर्देश तैयार करने' के विषय पर एक व्यापक रिपोर्ट तैयार करने का अनुरोध करते हैं। समिति ऐसे उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए न्यायिक अथवा प्रशासनिक स्तर पर पूर्व में किए गए उपायों तथा उन उपायों के क्रियान्वयन से धरातल पर प्राप्त विभिन्न परिणामों पर विचार करेगी। इसके अतिरिक्त, पूर्व के प्रयासों तथा न्यायिक व्यवस्था के विभिन्न हितधारकों द्वारा सामना किए गए विभिन्न वास्तविक अनुभवों को ध्यान में रखते हुए व्यापक सिफारिशें तैयार की जाएँगी। ये सिफारिशें 'यौन अपराधों तथा इसी प्रकार की संवेदनशील घटनाओं, जिनमें संवेदनशील पीड़ित, शिकायतकर्ता और/या साक्षी शामिल हों, से निपटते समय न्यायाधीशों और न्यायिक व्यवस्था के दृष्टिकोण के लिए प्रारूप दिशा–निर्देश' के रूप में होंगी।

24. समिति रिपोर्ट तैयार करते समय हमारे देश की भाषाई विविधता को ध्यान में रखेगी। ऐसे आपत्तिजनक शब्दों और अभिव्यक्तियों के अनेक उदाहरण हैं, जिनका प्रयोग सामान्यतः हमारे दंड कानूनों के अंतर्गत अपराध माना जाएगा, किंतु हमारी सामाजिक व्यवस्था के सदस्य स्थानीय बोलियों में उनका खुले रूप से प्रयोग करते हैं, संभवतः इसलिए कि ऐसी अभिव्यक्तियों की आपत्तिजनक प्रकृति के संबंध में स्पष्ट समझ का अभाव है। यह अत्यंत सराहनीय होगा यदि समिति अपनी रिपोर्ट के एक भाग के रूप में विभिन्न भाषाओं के ऐसे शब्दों/अभिव्यक्तियों की पहचान कर उनका संकलन करने में सक्षम हो, ताकि वे अनदेखे न रह जाएँ और शिकायतकर्ताओं/पीड़ितों को अपने द्वारा सहन किए गए आघात का अधिक बेहतर और पूर्ण विवरण प्रस्तुत करने के लिए सशक्त बनाया जा सके।

25. ऐसा करते समय विशेषज्ञ समिति को यह ध्यान रखना होगा कि इन दिशा–निर्देशों के प्राथमिक लाभार्थी पीड़ित/शिकायतकर्ता हैं, जिनमें से अधिकांश बच्चे, कम आयु की महिलाएँ और समाज के संवेदनशील वर्गों के सदस्य हैं। अतः समिति यह सुनिश्चित करेगी कि प्रारूप दिशा–निर्देश इस प्रकार तैयार किए जाएँ कि उनकी पृष्ठभूमि और साधनों की परवाह किए बिना ऐसे व्यक्तियों द्वारा उन्हें आसानी से समझा और उपयोग किया जा सके।

26. इस उद्देश्य से हम अनुशंसा करते हैं कि विशेषज्ञ समिति, जहाँ तक संभव हो, पूरी रिपोर्ट और किसी भी स्थिति में कम–से–कम प्रारूप दिशा–निर्देश ऐसी सरल भाषा में तैयार करे, जिसे सामान्य व्यक्ति आसानी से समझ सके और जिनके हितों की रक्षा के लिए ये दिशा–निर्देश बनाए जा रहे हैं। हम अपेक्षा करते हैं कि दिशा–निर्देश विदेशी भाषाओं और न्यायक्षेत्रों से उत्पन्न कठिन एवं जटिल अभिव्यक्तियों से बोझिल नहीं होंगे। उन्हें भारतीय न्यायिक प्रक्रिया के हितधारकों के वास्तविक और जीवनगत अनुभवों के संदर्भ में तैयार किया जाना चाहिए तथा हमारे देश की भावना, मूल्यों और सामाजिक संरचना का प्रत्यक्ष संदर्भ होना चाहिए।

27. समिति दिशा–निर्देशों के आमजन के लिए उपयोगी कुछ भागों के अनुवादित संस्करण तैयार करने पर भी विचार कर सकती है। इसका उद्देश्य भाषाई और विधिक दक्षता से परे सभी पाठकों को विभिन्न अवधारणाओं को पूर्णतः समझाना है।

28. हम यह भी स्पष्ट करना चाहेंगे कि हम प्रारूप दिशा–निर्देशों के आकार या विस्तार के संबंध में विशेषज्ञ समिति पर किसी प्रकार की सीमा नहीं लगाना चाहते। जब विभिन्न अवधारणाओं, अधिकारों, प्रक्रियाओं और अपनाई जाने वाली सर्वोत्तम कार्यप्रणालियों को समझाने और स्पष्ट करने का प्रयास किया जा रहा हो, तब समिति को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि रिपोर्ट व्यापक और पूर्ण हो तथा जहाँ आवश्यक हो, वहाँ उचित और पर्याप्त स्पष्टीकरण एवं उदाहरण भी दिए जाएँ।

29. विशेषज्ञ समिति इस विषय पर आवश्यकता के अनुसार अन्य विशेषज्ञों, जैसे भाषाविज्ञान के शिक्षाविदों, अभियोजकों, वादकारियों, सामाजिक वैज्ञानिकों और परामर्शदाताओं की सहायता लेने के लिए स्वतंत्र होगी।"

30. इस न्यायालय की रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि इस आदेश की एक प्रति न्यायमूर्ति बोस को भेजी जाए और हम उनसे अनुरोध करते हैं कि वे अधिमानतः दो सप्ताह की अवधि के भीतर विशेषज्ञ समिति का गठन करें। पक्षकारों के अधिवक्ताओं को अनुमति दी जाती है कि वे समिति के लिए प्रासंगिक लिखित प्रस्तुतियाँ, चार्ट, सूचियाँ और अन्य दस्तावेज दो सप्ताह के भीतर इस न्यायालय की रजिस्ट्री में दाखिल कर सकते हैं। इन दस्तावेजों के साथ इन सभी मामलों की पेपर–बुक्स का पूर्ण सेट भी समिति के विचारार्थ भेजा जाएगा।

31. विशेषज्ञ समिति के अध्यक्ष और सदस्यों को उनके मूल्यवान समय और प्रयासों के लिए ऐसा मानदेय दिया जाएगा, जैसा न्यायमूर्ति बोस द्वारा निर्धारित किया जाए। इसके लिए आवश्यक धनराशि भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उपलब्ध कराई जाएगी।

32. हम विशेषज्ञ समिति से अनुरोध करते हैं कि वह अपनी विचार–विमर्श प्रक्रिया पूरी कर इस न्यायालय के समक्ष अपनी रिपोर्ट अधिमानतः तीन महीने के भीतर प्रस्तुत करे।

33. उपर्युक्त निर्देश जारी किए जाने के पश्चात् हमारा सुविचारित मत है कि दिनांक 17.03.2025 के आदेश से संबंधित स्वतः संज्ञान रिट याचिका, जिसे हम पहले ही निरस्त कर चुके हैं, को लंबित रखने की आवश्यकता नहीं है। जब भी विशेषज्ञ समिति इस न्यायालय के समक्ष अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने में सक्षम होगी, उस रिपोर्ट पर किसी एक मामले के संदर्भ में विशेष रूप से नहीं, बल्कि समग्र दृष्टिकोण से विचार किया जाएगा। इस उद्देश्य से रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि विशेषज्ञ समिति से रिपोर्ट प्राप्त होने पर उसे उचित निर्देशों के लिए प्रशासनिक पक्ष में भारत के माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत किया जाए।

34. अतः उपर्युक्त जारी किए गए निर्देशों के अनुसार, वर्तमान स्वतः संज्ञान मामला निस्तारित किया जाता है। यदि कोई लंबित अंतरिम आवेदन हो, तो उनका भी निस्तारण किया जाता है।"

वर्तमान प्रकाशन भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों के अनुपालन में तैयार किया गया है। अधोहस्ताक्षरी द्वारा एक समिति का गठन किया गया, जिसमें गुजरात उच्च न्यायालय की पूर्व मुख्य न्यायाधीश माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सोनिया जी. गोकानी, मध्य प्रदेश की पूर्व पुलिस महानिदेशक श्रीमती अनुराधा शंकर, भारत के सर्वोच्च न्यायालय के अधिवक्ता डॉ. सूरत सिंह तथा नॉर्थ–ईस्टर्न हिल यूनिवर्सिटी, शिलांग के मानवविज्ञान विभाग की प्रोफेसर प्रो. लूसी टी. वी. ज़ेहोल शामिल थीं। समिति को राष्ट्रीय न्यायिक अकादमी की संकाय सदस्य डॉ. सोनम जैन ने कार्य पूर्ण करने में सहायता प्रदान की। मध्य प्रदेश कैडर के जिला न्यायाधीश तथा वर्तमान में अकादमी में विशेष कार्य अधिकारी श्री श्रीश कैलाश शुक्ल ने भी समिति को सुझाव और प्रशासनिक सहयोग प्रदान किया।

हमने सभी राज्य न्यायिक अकादमियों को एक प्रश्नावली भी भेजी थी, जिसका मुख्य उद्देश्य आपराधिक न्याय प्रणाली के विभिन्न हितधारकों से न्यायालयीन भाषा की उनकी समझ के संबंध में प्रतिक्रिया प्राप्त करना था। इन हितधारकों में न्यायिक अधिकारी, साक्षी और पीड़ित शामिल थे तथा उनसे जिला विधिक सेवा प्राधिकरणों के माध्यम से संपर्क किया गया। प्राप्त समेकित प्रतिक्रिया इस प्रकाशन का परिशिष्ट–I है।

इस प्रकार के कार्य को करना समिति के लिए एक विशिष्ट एवं चुनौतीपूर्ण कार्य था। समिति ने लैंगिक संबंधी मुद्दों के संदर्भ में निर्णयों की लेखन शैली को यथासंभव प्रस्तुत करने और उन पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। किंतु इस प्रकार का प्रकाशन स्थायी रूप से दिशा–निर्देश के रूप में कार्य नहीं कर सकता, क्योंकि भाषा निरंतर विकसित होती रहती है। सड़कों पर बोली जाने वाली भाषा सीधे न्यायिक निर्णयों का हिस्सा नहीं बन सकती। लैंगिक संबंधी मामलों में निर्णय सहानुभूति और संवेदनशीलता पर आधारित होने चाहिए तथा संपूर्ण विधिक समुदाय के सदस्यों का यह सामूहिक दायित्व होगा कि वे ऐसा भाषायी परिवेश विकसित करें, जिसमें आपत्तिजनक अथवा अवांछनीय शब्दों या घटनाओं के अनुचित वर्णन के तरीकों को धीरे–धीरे समाप्त किया जा सके। यह भी अत्यंत महत्वपूर्ण है कि न्यायाधीश और अधिवक्ता न्यायिक कार्यवाहियों में मर्यादित, संवेदनशील एवं परिष्कृत अभिव्यक्तियों का प्रयोग करें, ताकि पीड़ितों को न्यायालय में मानसिक संबल और सुरक्षा का अनुभव हो, न कि पुनः आघात का भय। उपयुक्त अभिव्यक्तियों का प्रयोग गहराई से विद्यमान लैंगिक पूर्वाग्रहों को समाप्त करने में सहायता कर सकता है।

समिति, माननीय सर्वोच्च न्यायालय की आभारी है कि उसे यह अवसर प्रदान किया गया। समिति के सदस्यों का मानना है कि यह प्रयास जीवन के अन्य क्षेत्रों में कार्यरत विचारशील व्यक्तियों को भी अपने–अपने क्षेत्रों में लैंगिक तटस्थता और संवेदनशीलता को बढ़ावा देने के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित करेगा। समिति इस प्रकाशन के लिए सहयोग प्रदान करने वाली सभी राज्य न्यायिक अकादमियों को भी धन्यवाद देती है।

न्यायमूर्ति अनिरुद्ध बोस

भारत में लैंगिक न्यायशास्त्र
(Gender Jurisprudence in India)

न्यायिक प्रक्रिया के निरंतर विकास के माध्यम से, भारत में न्यायपालिका ने इन मुद्दों से संबंधित मामलों का निस्तारण करते हुए लैंगिक न्याय के दायरे का निरंतर विस्तार किया है। न्यायालयों के निर्णयों के माध्यम से विकसित न्यायशास्त्र में मानवीय गरिमा, शारीरिक अखंडता, समानता तथा निजता के संरक्षण पर विशेष बल दिया गया है। न्यायालय पितृसत्तात्मक रूढ़िबद्ध धारणाओं को समाप्त करने, विभिन्न प्रकार की ''अंर्तसबंधित असुरक्षाओं (intersectional vulnerabilities)'' को मान्यता देने तथा कार्यस्थलों और संस्थागत स्तर पर ''प्रचलित लैंगिक उत्पीड़न से सुरक्षा हेतु संरक्षणात्मक उपायों को सुदृढ़ करने में परिवर्तनकारी भूमिका निभा रहे हैं। इस न्यायिक विकास के परिणामस्वरूप प्रजनन संबंधी स्वायत्तता तथा यौन स्वायत्तता को मान्यता मिली है और महिलाओं, बच्चों, ट्रांसजेंडर व्यक्तियों तथा क्वियर समुदायों/गैर–द्विआधारी व्यक्तियों के अधिकारों की पुष्टि लैंगिक–तटस्थ दृष्टिकोण से की गई है। विगत वर्षों में दिए गए अनेक न्यायिक निर्णय सामूहिक रूप से अधिक समावेशी समाज के निर्माण के प्रति न्यायपालिका की निरंतर प्रतिबद्धता को प्रतिबिंबित करते हैं।

क्रम संख्या	वाद संख्या (वर्ष के साथ)	तथ्यात्मक संक्षिप्त विवरण	भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से लैंगिक न्यायशास्त्र के संक्रमण को प्रतिबिंबित करने वाले सिद्धांत
1	युसुफ अब्दुल अजीज बनाम बम्बई राज्य (एआईआर 1954 एससी 321)	भारतीय दंड संहिता की धारा 497 (व्यभिचार संबंधी कानून) को लैंगिक भेदभाव के आधार पर चुनौती दी गई। (भारतीय दंड संहिता की धारा 497 को बाद में जोसेफ शाइन बनाम भारत संघ मामले में असंवैधानिक घोषित कर निरस्त कर दिया गया, जिसे इस तालिका में क्रम संख्या 13 पर शामिल किया गया है।)	माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 15(3) के अंतर्गत महिलाओं के लिए बनाए गए विशेष प्रावधानों की संवैधानिक वैधता को बरकरार रखा। न्यायालय ने माना कि वास्तविक एवं सार्थक समानता सुनिश्चित करने के लिए महिलाओं के पक्ष में विशेष एवं सुरक्षात्मक उपाय किए जा सकते हैं।
2	सी. बी. मुथम्मा बनाम भारत संघ (1979) 4 एससीसी 260	भारतीय विदेश सेवा में कार्यरत प्रथम महिला अधिकारी ने भेदभावपूर्ण पदोन्नति एवं सेवा नियमों को चुनौती दी।	न्यायालय ने लिंग आधारित सेवा नियमों की आलोचना की तथा सार्वजनिक रोजगार में समानता के सिद्धांत की पुष्टि की। न्यायालय ने स्पष्ट किया कि विवाहित महिलाओं को विवाहित पुरुषों की तुलना में निम्नतर या भेदभावपूर्ण स्थिति में नहीं रखा जा सकता।

क्रम संख्या	वाद संख्या (वर्ष के साथ)	तथ्यात्मक संक्षिप्त विवरण	भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से लैंगिक न्याय शास्त्र के संक्रमण को प्रतिबिंबित करने वाले सिद्धांत
3	तुकाराम बनाम महाराष्ट्र राज्य (1979) 2 एससीसी 143	पुलिस हिरासत में एक नाबालिग लड़की के साथ बलात्कार का मामला। सहमति के संबंध में प्रतिबंधात्मक न्यायिक तर्क के आधार पर अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया गया।	इस मामले के पश्चात व्यापक जन–विरोध एवं सार्वजनिक आक्रोश के कारण बलात्कार संबंधी कानूनों में महत्वपूर्ण सुधार हुए। बलात्कार के मामलों में पीड़िता–केंद्रित दृष्टिकोण को महत्व दिया गया तथा सहमति एवं साक्ष्य से संबंधित कानूनी प्रावधानों में परिवर्तन किए गए।
4	एयर इंडिया बनाम नरगिश मिर्जा (1981) 4 एससीसी 335	एयर इंडिया की महिला परिचारिकाओं ने विवाह एवं गर्भावस्था के आधार पर अनिवार्य सेवानिवृत्ति संबंधी नियमों को चुनौती दी।	न्यायालय ने गर्भावस्था के आधार पर सेवा समाप्ति संबंधी नियमों को मनमाना एवं असंवैधानिक माना तथा ऐसे प्रावधानों को नारीत्व एवं महिला गरिमा का अपमान बताया।
5	भरवाड़ा भोगिनभाई हिरजीभाई बनाम गुजरात राज्य (1983) 3 एससीसी 217	**बलात्कार पीड़िता** की गवाही पर पुश्टिकरण के अभाव के कारण सवाल उठाये गए।	न्यायालय ने यौन हिंसा की रिपोर्ट करने से जुड़े सामाजिक कलंक को मान्यता देते हुए माना कि पीड़िता की गवाही के लिए पुश्टिकरण आवश्यक नहीं है।

क्रम संख्या	वाद संख्या (वर्ष के साथ)	तथ्यात्मक संक्षिप्त विवरण	भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से लैंगिक न्याय शास्त्र के संक्रमण को प्रतिबिंबित करने वाले सिद्धांत
6	पंजाब राज्य बनाम गुरमीत सिंह (1996) 2 एससीसी 384	बलात्कार की पीड़िता की गोपनीयता एवं गरिमा तथा मुकदमे के दौरान उसकी गरिमा की रक्षा का प्रश्न।	न्यायालय ने बंद कमरे में सुनवाई (इन–कैमरा कार्यवाही), गोपनीयता की सुरक्षा तथा पीड़िता की गरिमा पर विशेष बल दिया। न्यायालय ने यह माना कि कोई भी महिला झूठा आरोप लगाकर स्वयं को अपमानित करने का जोखिम नहीं उठाएगी।
7	विशाखा बनाम राजस्थान राज्य (1997) 6 एससीसी 241	कार्यस्थल पर एक सामाजिक कार्यकर्ता के यौन उत्पीड़न का मामला।	न्यायालय ने कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न की रोकथाम के लिए विशाखा दिशानिर्देश निर्धारित किए। न्यायालय ने स्पष्ट किया कि लैंगिक समानता में कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से सुरक्षा भी शामिल है।
8	साक्षी बनाम भारत संघ (2004) 5 एससीसी 518	एक गैर–सरकारी संगठन ने यौन अपराधों से संबंधित मामलों में बाल–संवेदनशील न्यायिक प्रक्रिया अपनाने की मांग की।	माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बाल पीड़ितों को मानसिक आघात से बचाने के लिए बाल–संवेदनशील न्यायिक प्रक्रिया अपनाने का निर्देश दिया।
9	अनुज गर्ग बनाम होटल एसोसिएशन ऑफ इंडिया (2008) 3 एससीसी 1	महिलाओं को मद्य परोसने वाले प्रतिष्ठानों में काम करने से रोकने वाले कानून को चुनौती दी गई।	न्यायालय ने कहा कि किसी कानून का मूल्यांकन केवल उसके उद्देश्य के आधार पर नहीं, बल्कि उसके वास्तविक प्रभाव के आधार पर भी किया जाना चाहिए। न्यायालय ने महिलाओं को रोजगार से बाहर रखने वाले बहिष्करणकारी प्रावधानों को असंवैधानिक घोषित किया।

क्रम संख्या	वाद संख्या (वर्ष के साथ)	तथ्यात्मक संक्षिप्त विवरण	भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से लैंगिक न्याय शास्त्र के संक्रमण को प्रतिबिंबित करने वाले सिद्धांत
10	सुचिता श्रीवास्तव बनाम चंडीगढ़ प्रशासन (2009) 9 एससीसी 1	बौद्धिक दिव्यांगता से ग्रस्त एक गर्भवती महिला ने गर्भपात के संबंध में अपने निर्णय लेने की स्वायत्तता की मांग की।	न्यायालय ने प्रजनन संबंधी स्वायत्तता को व्यक्तिगत स्वतंत्रता का एक महत्वपूर्ण पहलू माना तथा इसे गरिमा, शारीरिक अखंडता और निजता के अधिकार से जोड़ा।
11	राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण बनाम भारत संघ (2014) 5 एससीसी 438	ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के कानूनी अधिकारों की मान्यता का प्रश्न।	न्यायालय ने ट्रांसजेंडर व्यक्तियों की लैंगिक पहचान को संवैधानिक मान्यता प्रदान की, उनकी गरिमा की पुष्टि की तथा समाज में उनके समावेशन के लिए सकारात्मक एवं सहायक उपाय किए जाने का निर्देश दिया।
12	जोसेफ शाइन बनाम भारत संघ (2019) 3 एससीसी 39	व्यभिचार संबंधी कानून को अपराध की श्रेणी में रखने को चुनौती दी गई।	माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने व्यभिचार संबंधी कानून को असंवैधानिक घोषित करते हुए निरस्त कर दिया तथा विवाह से संबंधित पितृसत्तात्मक धारणाओं को अस्वीकार किया।
13	इंडियन यंग लॉयर्स एसोसिएशन बनाम केरल राज्य (2019) 11 एससीसी 1	महिलाओं ने सबरीमाला मंदिर में प्रवेश से वंचित किए जाने को चुनौती दी।	न्यायालय ने माना कि जैविक आधार पर महिलाओं का बहिष्कार उनकी गरिमा एवं समानता के अधिकार का उल्लंघन करता है। न्यायालय ने यह भी प्रतिपादित किया कि संवैधानिक नैतिकता पितृसत्तात्मक प्रथाओं एवं रूढ़ियों पर सर्वोपरि है।

क्रम संख्या	वाद संख्या (वर्ष के साथ)	तथ्यात्मक संक्षिप्त विवरण	भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से लैंगिक न्यायशास्त्र के संक्रमण को प्रतिबिंबित करने वाले सिद्धांत
14	सचिव, रक्षा मंत्रालय बनाम बाबिता पुनिया (2020) 7 एससीसी 469	महिला अधिकारियों ने भारतीय सेना में स्थायी कमीशन प्रदान किए जाने की मांग की।	न्यायालय ने महिलाओं की भूमिकाओं के संबंध में रूढ़िवादी धारणाओं को अस्वीकार किया तथा कहा कि शारीरिक या सामाजिक धारणाओं के आधार पर महिलाओं को समान अवसर से वंचित नहीं किया जा सकता।
15	लेफ्टिनेंट कर्नल नितिशा बनाम भारत संघ (2021)15 एससीसी 125	सेना में चयन के लिए निर्धारित शारीरिक रूप से तटस्थ मानकों को चुनौती दी गई।	न्माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अप्रत्यक्ष भेदभाव की अवधारणा को मान्यता दी तथा सार्थक समानता के न्यायशास्त्र को आगे बढ़ाया।
16	अपर्णा भट्ट बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2021) 3 एससीसी 247	उच्च न्यायालय द्वारा बलात्कार के मामले में रूढ़िवादी टिप्पणियाँ की गईं तथा समझौते का सुझाव दिया गया।	न्यायालय ने न्यायाधीशों को लैंगिक रूढ़ियों से बचने का निर्देश दिया तथा बलात्कार के मामलों में विवाह या समझौते का सुझाव देने को प्रतिबंधित किया।
17	भारत संघ के लिए महान्यायवादी बनाम सतीश (2022) 5 एससीसी 545	उच्च न्यायालय ने त्वचा से त्वचा के संपर्क के आधार पर पॉक्सो अधिनियम के अंतर्गत अभियुक्त को दोषमुक्त किया।	माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त व्याख्या को निरस्त करते हुए कहा कि बाल संरक्षण संबंधी कानूनों की व्याख्या उनके उद्देश्य एवं संरक्षणात्मक भावना के अनुरूप व्यापक और उद्देश्यपूर्ण ढंग से की जानी चाहिए।

क्रम संख्या	वाद संख्या (वर्ष के साथ)	तथ्यात्मक संक्षिप्त विवरण	भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से लैंगिक न्यायशास्त्र के संक्रमण को प्रतिबिंबित करने वाले सिद्वांत
18	पाटन जमाल वली बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (2021) 16 एससीसी 225	एक दलित महिला के साथ बलात्कार एवं हत्या का मामला।	न्यायालय ने अंतर्विभागीयता की अवधारणा को मान्यता दी तथा स्वीकार किया कि जाति, लिंग और दिव्यांगता के आधार पर होने वाला भेदभाव एक–दूसरे से जुड़कर अधिक गंभीर एवं जटिल रूप ले सकता है।
19	झारखंड राज्य बनाम शैलेंद्र कुमार राय (2022) 14 एससीसी 299	बलात्कार की चिकित्सीय जांच के दौरान दो–अंगुली परीक्षण के प्रयोग का प्रश्न।	माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दो–अंगुली परीक्षण को प्रतिगामी एवं अप्रासंगिक बताते हुए इसकी कड़ी निंदा की तथा निर्देश दिया कि इसका प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।
20	एक्स बनाम प्रधान सचिव, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग, दिल्ली (2023) 9 एससीसी 433	एक अविवाहित महिला ने 20 सप्ताह के बाद गर्भपात की अनुमति न दिए जाने को चुनौती दी।	न्यायालय ने माना कि अविवाहित महिलाएँ भी प्रजनन संबंधी स्वायत्तता के अधिकार की समान रूप से हकदार हैं तथा सीमित उद्देश्यों के लिए वैवाहिक बलात्कार को मान्यता दी।
21	दीपिका सिंह बनाम केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण (2023) 13 एससीसी 681	पारंपरिक परिवार संरचना से भिन्न परिवार के आधार पर मातृत्व अवकाश से वंचित किए जाने का मामला।	न्यायालय ने माना कि समकालीन समाज में परिवार विभिन्न एवं विविध रूपों में अस्तित्व में रहते हैं तथा देखभाल एवं पारिवारिक भूमिकाओं के संबंध में रूढ़िवादी धारणाओं को अस्वीकार किया।

क्रम संख्या	वाद संख्या (वर्ष के साथ)	तथ्यात्मक संक्षिप्त विवरण	भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से लैंगिक न्यायशास्त्र के संक्रमण को प्रतिबिंबित करने वाले सिद्धांत
22	सुप्रियो / सुप्रिया चक्रवर्ती एवं अन्य बनाम भारत संघ (2023 आईएनएससी 920)	समलैंगिक विवाहों को कानूनी मान्यता प्रदान करने के लिए याचिका दायर की गई।	न्यायालय ने समलैंगिक विवाह को कानूनी मान्यता प्रदान करने से इनकार किया, किंतु गरिमा, स्वायत्तता तथा भेदभाव से सुरक्षा के समलैंगिक व्यक्तियों के अधिकारों की पुनः पुष्टि की।
23	इन रीः प्रशिक्षु चिकित्सक के साथ कथित बलात्कार एवं हत्या की घटना (2024 आईएनएससी 613)	एक प्रशिक्षु चिकित्सक के विरुद्ध यौन हिंसा की घटना पर संस्थागत प्रतिक्रिया का प्रश्न।	माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने संस्थागत जवाबदेही, सुरक्षित कार्यस्थल तथा पीड़िता की गरिमा पर विशेष बल दिया।
24	डॉ. सोहेल मलिक बनाम भारत संघ (2025 एससीसी ऑनलाइन एससी 2751)	कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न की रोकथाम, निषेध एवं निवारण अधिनियम (पॉश अधिनियम) के अंतर्गत आंतरिक शिकायत समिति के अधिकार–क्षेत्र को चुनौती दी गई।	न्यायालय ने स्पष्ट किया कि आंतरिक शिकायत समिति का अधिकार–क्षेत्र विभिन्न विभागों तक विस्तृत हो सकता है तथा उसे पॉश अधिनियम के निवारणात्मक उद्देश्य एवं भावना के अनुरूप कार्य करना आवश्यक है।
25	वनीता पटनायक बनाम निर्मल कांति चक्रवर्ती (2025 आईएनएससी 1106)	कार्यस्थल पर लगातार यौन उत्पीड़न की शिकायत का मामला।	न्यायालय ने माना कि शत्रुतापूर्ण कार्य वातावरण भी निरंतर यौन उत्पीड़न का रूप ले सकता है। ऐसे मामलों में पॉश अधिनियम के अंतर्गत पीड़ित–केंद्रित एवं संवेदनशील व्याख्या आवश्यक है।

क्रम संख्या	वाद संख्या (वर्ष के साथ)	तथ्यात्मक संक्षिप्त विवरण	भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से लैंगिक न्यायशास्त्र के संक्रमण को प्रतिबिंबित करने वाले सिद्धांत
26	निपुण सक्सेना बनाम भारत संघ (2019) 2 एससीसी 703	यौन अपराधों की पीड़िताओं की पहचान एवं निजता की सुरक्षा का प्रश्न।	न्यायालय ने बलात्कार की पीड़िताओं की पहचान सार्वजनिक करने पर वैधानिक प्रतिबंध को और अधिक सुदृढ़ किया तथा आपराधिक न्याय प्रक्रिया के दौरान, जिसमें न्यायिक अभिलेख एवं मीडिया में रिपोर्टिंग भी शामिल है, उनकी निजता एवं गरिमा की रक्षा के लिए व्यापक निर्देश जारी किए।
27	मनीषा रविंद्र पानपाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य (2024 आईएनएससी 762)	एक निर्वाचित महिला सरपंच को इस आरोप के आधार पर पद से अयोग्य ठहरा दिया गया कि वह सरकारी भूमि पर अतिक्रमण कर बनाए गए मकान में निवास करती थी।	न्यायालय ने माना कि निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों के विरुद्ध कानूनी एवं प्रशासनिक कार्रवाइयाँ कभी–कभी महिलाओं द्वारा सत्ता एवं अधिकार का प्रयोग किए जाने के प्रति पितृसत्तात्मक प्रतिरोध में निहित हो सकती हैं, विशेषकर ग्रामीण शासन व्यवस्था में।

टिप्पणीः उपर्युक्त तालिका केवल उदाहरणात्मक है और लैंगिक न्याय एवं संवैधानिक समानता के विकास में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित व्यापक न्यायशास्त्र का पूर्ण एवं विस्तृत विवरण नहीं है।

पीड़ित–दोषारोपण के विरुद्ध विधिक संरक्षण

भारतीय विधि में बलात्कार से संबंधित मामलों में पीड़ित/उत्तरजीवी को पीड़ित–दोषारोपण से बचाने के लिए पहले से ही "रेप–शील्ड" संबंधी विधिक संरक्षण उपलब्ध हैं। यह सिद्धांत सुदृढ़ करता है कि सहमति का निर्धारण कथित घटना की परिस्थितियों के आधार पर किया जाना चाहिए, न कि पीड़ित/उत्तरजीवी के व्यक्तिगत या पूर्व जीवन–वृत्त के आधार पर। ये विधिक संरक्षण विचारण के दौरान द्वितीयक पीड़ितीकरण को रोकने, पीड़ित/उत्तरजीवी की गरिमा एवं निजता को बनाए रखने तथा पीड़िताओं को चरित्र–हनन के भय के बिना अपराध की शिकायत करने के लिए प्रोत्साहित करने में सहायक हैं। पूर्ववर्ती भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 146 शिकायतकर्ता के यौन प्रतिष्ठा अथवा चरित्र के संबंध में किसी प्रकार के संकेत या आरोप को प्रतिबंधित करती थी। State of Jharkhand v- Shailendra Kumar Rai[1] मामले में इस सिद्धांत पर बल देते हुए न्यायालय ने कहा कि किसी महिला का "यौन इतिहास पूर्णतः अप्रासंगिक" है और केवल इस आधार पर कि कोई महिला यौन रूप से सक्रिय रही है, उसके कथन पर विश्वास नहीं किया जा सकता–ऐसा दृष्टिकोण "पितृसत्तात्मक एवं लैंगिक भेदभावपूर्ण" है।[2] न्यायालय ने यह भी उल्लेख किया कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 53। स्पष्ट रूप से यह निर्धारित करती है कि बलात्कार के विचारण में पीड़िता का पूर्व यौन अनुभव सहमति के प्रश्न के संबंध में "प्रासंगिक नही" है।[3] इसी प्रकार, इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने हाल ही में एक अधिवक्ता द्वारा बलात्कार की पीड़िता को "a women of easy virtue" (सहज चरित्र वाली/चरित्रहीन महिला) कहने के प्रयास की कड़ी निंदा की और ऐसे चरित्र–आधारित आक्षेप को "पूर्णतः अप्रासंगिक" माना तथा स्पष्ट किया कि विधि द्वारा इस प्रकार के आक्षेप निषिद्ध हैं।[4] संक्षेप में, भारतीय न्यायालयों ने अब पुनः यह स्थापित किया है कि पीड़िता/उत्तरजीवी की सामाजिक प्रतिष्ठा, चरित्र अथवा पूर्व यौन जीवन का उसके साक्ष्य की विश्वसनीयता निर्धारित करने में कोई स्थान नहीं है।[5]

---

1. (2022) 14 SCC 299.
2. Patriarchal & sexist to assume that a sexually active woman cannot be raped; Anyone conducting 'two-finger' test will be guilty of misconduct: SC, https://www.scconline.com/blog/post/2022/11/01/two-finger-test-banned-sexually-activewomen-can-be-raped-guilty-misconduct-supreme-court-legal-updates-research guidelinesnews/#:~:text=,%E2%80%9D.
3. Ibid. (The said provision is incorporated in Section 48 of the Bharatiya Sakshya Adhiniyam (BSA), 2023)
4. Bechan Prasad v. State of U.P. and Another, 2026:AHC:21013.
5. Allahabad HC pulls up advocate for calling rape victim a woman of "easy virtue"; says it violates dignity & privacy under Article 21, https://www.scconline.com/blog/post/2026/02/06/rape-survivor-character-assassinationallahabad-hc/#:~:text=The%20Court%20added%20that%20any,of%20the%20%20122.

यह अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रचलित बलात्कार–पीड़ित संरक्षण मानकों के अनुरूप है। उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमेरिका में लागू संघीय साक्ष्य नियमों के अंतर्गत अधिकांश यौन हमले के मामलों में शिकायतकर्ता के यौन व्यवहार या यौन प्रवृत्ति को साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करने पर प्रतिबंध है।[6] ऐसे विधिक प्रावधान तथा CEDAW (महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन पर अभिसमय),1979 के अनुच्छेद 5 में निहित सिद्धांत यह मान्यता देते हैं कि किसी महिला के निजी जीवन के संबंध में प्रश्न करना केवल प्रचलित मिथकों एवं रूढ़िबद्ध धारणाओं को बनाए रखता है और अपराध की रिपोर्ट करने से पीड़िताओं को हतोत्साहित करता है।

प्रतिपरीक्षण एवं यौन इतिहास

व्यवहार में, पीड़िताओं को अक्सर ऐसे उत्पीड़नकारी प्रतिपरीक्षण का सामना करना पड़ता है, जिसका उद्देश्य उनके कथन के संबंध में संदेह उत्पन्न करना होता है। अपराध घटित होने के पश्चात जब मामला विचारण के चरण तक पहुँचता है, तब पीड़िता को प्रायः सर्वाधिक मानसिक एवं भावनात्मक आघात का सामना करना पड़ता है। न्यायाधीशों ने अब ऐसी रणनीतियों पर नियंत्रण स्थापित करना प्रारंभ कर दिया है। उदाहरण के लिए, एक महत्वपूर्ण न्यायिक निर्णय में कुख्यात दो–उंगली परीक्षण को तत्काल समाप्त करने का निर्देश दिया गया तथा यह स्पष्ट किया गया कि कोई महिला यौन संबंधों की अभ्यस्त है या नहीं, यह तथ्य बलात्कार का निर्धारण करने के लिए "अप्रासंगिक" है।[1] न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा कि *"किसी महिला का यौन इतिहास यह निर्धारित करने में पूर्णतः अप्रासंगिक है कि अभियुक्त ने उसके साथ बलात्कार किया है या नहीं।"* न्यायालय ने यह भी रेखांकित किया कि पीड़िता के साक्ष्य की साक्ष्यात्मक महत्ता उसके यौन इतिहास पर निर्भर नहीं करती। केवल इस आधार पर कि *"कोई महिला यौन रूप से सक्रिय रही है"*, उसके कथन को अविश्वसनीय मानना *"पितृसत्तात्मक एवं लैंगिक भेदभावपूर्ण"* दृष्टिकोण है।

भारतीय विचारण न्यायालय भी उन विधिक प्रावधानों से आबद्ध हैं, जो बचाव पक्ष के अधिवक्ताओं द्वारा पीड़िताओं से पूछे जाने वाले प्रश्नों की सीमा एवं प्रकृति को नियंत्रित करते हैं। भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 2023 की धारा 154 एवं 155 न्यायालय को क्रमशः अशोभनीय या कलंकात्मक प्रश्नों तथा अपमानजनक या कष्टप्रद प्रश्नों को नियंत्रित करने की शक्ति प्रदान करती हैं,

6. Rule 412. Sex-Offence Cases: The Victim,

https://www.law.cornell.edu/rules/fre/rule_412#:~:text=%28a%29%20Prohibited%20Uses,proceeding%20involving%20alleged%20sexual%20misconduct.

7. Lillu @ Rajesh v. State of Haryana, (2013) 14 SCC 643

जिन्हें साक्ष्य के परीक्षण के दौरान पूछा जा सकता है। इसका अर्थ है कि अधिवक्ता पीड़िता को बदनाम करने के उद्देश्य से उसे "चरित्रहीन महिला" कहकर संबोधित नहीं कर सकते और न ही उसके विवाहेतर अथवा अनियंत्रित यौन आचरण के संबंध में आरोप लगाकर उसकी प्रतिष्ठा को धूमिल कर सकते। वास्तव में, न्यायालय ऐसे संकेतों एवं आक्षेपों को नियमित रूप से अप्रासंगिक मानते हुए अस्वीकार करते हैं। उदाहरण के लिए, बंबई उच्च न्यायालय ने इस तर्क को अस्वीकार कर दिया कि किसी किशोरी के दो पुरुष मित्र होने का तथ्य उसके साथ बलात्कार किए जाने को उचित ठहराता है। न्यायालय ने कहा कि "किसी महिला का चरित्र संदिग्ध हो सकता है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि कोई भी व्यक्ति इसका अनुचित लाभ उठा सकता है। उसे 'न' कहने का अधिकार है।" माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी यह प्रतिपादित किया है कि यदि किसी मामले में अभियोजन पक्ष की महिला पूर्व में विवाहेतर अथवा अनियंत्रित यौन व्यवहार में लिप्त रही हो, तब भी उसे किसी भी व्यक्ति के साथ यौन संबंध स्थापित करने के लिए बाध्य होने से इंकार करने का अधिकार है, क्योंकि वह किसी भी व्यक्ति द्वारा यौन उत्पीड़न का शिकार बनने के लिए कोई असुरक्षित वस्तु अथवा आसान लक्ष्य नहीं है।[8]

न्यायिक संवेदनशीलता में विरोधाभासः प्रगतिशील दृष्टिकोण और विद्यमान पूर्वाग्रह

अध्ययन के उद्देश्य से समिति ने देश भर के विभिन्न विचारण न्यायालयों के 125 निर्णयों का विश्लेषण किया तथा सभी राज्य न्यायिक अकादमियों से भी सहायता प्राप्त की। इन निर्णयों से न्यायाधीशों की धारणाओं एवं मानसिकता तथा किसी मामले का निर्णय करते समय अपनाए गए न्यायिक दृष्टिकोण की एक मिश्रित तस्वीर सामने आई। कुछ मामलों में न्यायाधीश पीड़ित, साक्षी तथा महिलाओं और बच्चों जैसे संवेदनशील एवं असुरक्षित समूहों की परिस्थितियों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील दिखाई दिए। उन्होंने पीड़ित के अधिकारों को प्राथमिकता दी और साथ ही सामाजिक हित तथा पीड़ित के हित के बीच संतुलन स्थापित किया।

1996 के एक मार्गदर्शक निर्णय State of Punjab v. Gurmit Singh,[9] में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालयों को निर्देश दिया कि वे साक्ष्य दर्ज किए जाने के दौरान पीड़िताओं की सक्रिय रूप से सुरक्षा करें तथा जब पीड़िता को लज्जित करने, अपमानित करने

8. State (NCT of Delhi) v. Pankaj Chaudhary, (2019) 11 SCC 575

9. (1996) 2 SCC 384.

भयभीत करने वाली परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा हो, तब न्यायालय मूक दर्शक बनकर न बैठे रहें। न्यायाधीश यह समझते थे कि महिलाएँ ऐसी घटनाओं की शिकायत करने में संकोच करती हैं और वे इस बात के प्रति पर्याप्त रूप से सजग थे, कि जब प्रतिपरीक्षण नैतिक मानकों की सीमा से आगे बढ़ जाए, तो वे बीच में हस्तक्षेप करें। ये निर्णय एक आधुनिक एवं लैंगिक–संवेदनशील न्यायिक दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित करते हैं, जिसमें केवल दंडादेश पर ही नहीं, बल्कि प्रतिकर, पुनर्वास तथा समग्र समाज पर भी ध्यान केंद्रित किया गया है।

इसके विपरीत, कुछ मामलों में "आप उस समय वहाँ क्यों थीं?", "आपने इस प्रकार के वस्त्र क्यों पहने थे?", "आपके साथ कोई पुरुष क्यों नहीं था?", "आपने इतनी देर से शिकायत क्यों दर्ज कराई?" जैसे प्रश्नों का बार–बार प्रयोग किया जाता है। वैवाहिक मामलों में, जब महिलाएँ शिकायत दर्ज कराने के लिए पुलिस के पास जाती हैं, तो उनसे अविश्वासपूर्ण ढंग से पूछा जाता है कि "अब क्यों?" इतने वर्षों के बाद शिकायत क्यों की? आपके बच्चे भी हैं; वैवाहिक जीवन में ऐसा होता रहता है। आप तो आर्थिक रूप से संपन्न हैं और इस प्रकार के वस्त्र पहनती हैं। क्या आपकी कहानी वास्तव में सत्य है? महिलाओं को इस प्रकार के अनेक प्रश्नों का सामना करना पड़ता है। ऐसी परिस्थितियाँ केवल पुलिस थाने तक सीमित नहीं रहतीं, बल्कि एकल–खिड़की संकट केंद्रों, सहायता प्रदान करने वाले व्यक्तियों, जेलों, अस्पतालों आदि में भी महिलाओं को इसी प्रकार के आघात का सामना करना पड़ता है।[10] न्यायालय ही वह स्थान है जहाँ न्यायाधीश पीड़िता की पूरी बात सुनते हैं। महिलाएँ इसी आशा से न्यायालय में अपनी बात रखती हैं कि न्यायाधीश उनकी गरिमा और सम्मान की रक्षा के लिए उचित कदम उठाएँगे। न्यायाधीश को अपने न्यायालय की कार्यवाही को नियंत्रित करने का अधिकार प्राप्त है। वे न्यायालय के कर्मचारियों को पीड़िता के प्रति मूलभूत शिष्टाचार एवं सौजन्य बरतने का निर्देश दे सकते हैं, जैसे बैठने के लिए कुर्सी और पीने के लिए पानी उपलब्ध कराना। जब पीड़िता अपना बयान दर्ज करा रही हो, तब न्यायाधीश को अपेक्षाकृत अधिक सजग एवं सतर्क रहना चाहिए। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि अनावश्यक व्यक्तियों को वहाँ से हटा दिया जाए, ताकि पीड़िता अधिक सहज महसूस कर सके। न्यायाधीश को केवल उसके शब्दों पर ही नहीं, बल्कि उसकी शारीरिक भाषा एवं हाव–भाव पर भी ध्यान देना चाहिए।

---

10 Inputs for Guidelines for a Gender-Just Justice System With Reference To Women Survivors of Violence, Abuse & Exploitation – (Note Prepared through a Consultative Process with Civil Society Groups) By State Women's Commission, Madhya Pradesh.

न्याय प्रदान करने की संपूर्ण व्यवस्था के प्रत्येक स्तर पर–चाहे वह पुलिस थाना हो, अस्पताल, एकल–खिड़की संकट केंद्र अथवा न्यायालय– हिंसा की पीड़ित/उत्तरजीवी महिलाओं को विभिन्न प्रकार के भेदभावपूर्ण, असंवेदनशील तथा पीड़िता को दोषी ठहराने वाले व्यवहार का सामना करना पड़ता है। उत्तरजीवियों के बयानों के संबंध में भी उन्हें नियमित रूप से ऐसी टिप्पणियों का सामना करना पड़ता है, जैसे–"घर की बात है, इतना क्या हो गया?" या "समझौता कर लो, घर बच जाएगा।" इस प्रकार की टिप्पणियाँ उनके साथ हुई हिंसा के अनुभव को तुच्छ समझती हैं और उन्हें समझौता करने के लिए दबाव में डालती हैं। पुलिस तथा अन्य प्राधिकारी अक्सर उनके पहनावे पर भी प्रश्न उठाते हैं, जैसे–"लिपस्टिक लगाकर शिकायत दर्ज कराने आई हो?" अथवा उनकी मंशा पर संदेह व्यक्त करते हुए कहते हैं–"आजकल की औरतें ड्रामा करती हैं।" उत्तरजीवियों से उनके निजी जीवन एवं आचरण के संबंध में भी अप्रासंगिक और हस्तक्षेपकारी प्रश्न पूछे जाते हैं, उदाहरणार्थ–"आप इसी तरह कपड़े पहनकर रहती हैं?" या "घर में आपका व्यवहार कैसा है?" इस प्रकार के कथन उत्तरजीवी का आत्मविश्वास बढ़ाने के बजाय उसे और अधिक ''मानसिक आघात'' पहुँचाते हैं तथा न्याय प्राप्त करने के लिए आगे आने से हतोत्साहित करते हैं।[11]

दिशा–निर्देशों के अंतर्गत दर्ज किए गए बयानों से इन अनुभवों की वास्तविकता स्पष्ट होती है। एक उत्तरजीवी ने बताया कि दृश्य रूप से दिखाई देने वाली चोटें सहने के बाद भी उसे अस्पताल में प्रतीक्षा करने के लिए कहा गया और चिकित्सकीय परीक्षण से पूर्व उससे "घर में आपके व्यवहार" के संबंध में पूछताछ की गई। एक अन्य ''ट्रांस व्यक्ति'' ने बताया कि उसे "पहचान सत्यापन" के नाम पर कपड़े उतारने के लिए विवश किया गया तथा झूठे बयानों पर हस्ताक्षर करने के लिए दबाव डाला गया। इसके साथ ही उसका उपहास किया गया और उसे परिवार से मिलने अथवा सम्मानजनक व्यवहार प्राप्त करने से भी वंचित किया गया। इस प्रकार के अनुभव यह स्पष्ट करते हैं कि उत्तरजीवियों को प्रत्येक चरण में ''व्यवस्थागत बाधाओं और पितृसत्तात्मक दृष्टिकोणों'' का सामना करना पड़ता है। विशेष रूप से हाशिए पर स्थित सामाजिक पृष्ठभूमि से आने वाले व्यक्तियों को अतिरिक्त रूप से ''जाति, वर्ग अथवा लिंग के आधार पर भेदभाव'' का सामना करना पड़ता है।[12]

11 Inputs for Guidelines for a Gender-Just Justice System With Reference To Women Survivors of Violence, Abuse & Exploitation – (Note Prepared through a Consultative Process with Civil Society Groups) By State Women's Commission, Madhya Pradesh.

12 Inputs for Guidelines for a Gender-Just Justice System With Reference To Women Survivors of Violence, Abuse & Exploitation – (Note Prepared through a Consultative Process with Civil Society Groups) By State Women's Commission, Madhya Pradesh.

माननीय केरल उच्च न्यायालय[1] ने दिसंबर 2024 में वैवाहिक अपील संख्या 706/2024 में निर्णय देते हुए कहा कि वस्त्र पहनना स्व–अभिव्यक्ति का एक रूप है, जो किसी व्यक्ति की पहचान का हिस्सा अथवा उसकी सामान्य सौंदर्यबोध संबंधी अभिव्यक्ति हो सकता है। किसी सभ्य समाज में केवल किसी महिला के पहनावे के आधार पर उसका मूल्यांकन करना अथवा उसके चरित्र या शालीनता के संबंध में निष्कर्ष निकालना अस्वीकार्य और अनुचित है, क्योंकि इस प्रकार के निर्णय पितृसत्तात्मक सोच की कठोर धारणाओं पर आधारित होते हैं। न्यायालय ने यह भी कहा कि किसी महिला द्वारा अपने वस्त्रों एवं पहनावे के संबंध में किए गए चुनाव उसकी स्वयं की पसंद और स्वायत्तता का विषय हैं। उन विकल्पों को नैतिक निगरानी या नैतिक मूल्यांकन के अधीन नहीं किया जा सकता, विशेष रूप से न्यायालयों द्वारा तो बिल्कुल नहीं।

13. XXXXX v. XXXXX, 2024:KER:91898

रूढ़िबद्ध धारणाओं के विरुद्ध नियम : लैंगिक न्यायपूर्ण समाज की ओर संक्रमण

भारत में न्यायिक दृष्टिकोण ने लगातार ''लिंग–आधारित रूढ़िबद्ध धारणाओं'' के न्यायिक निर्णयों में प्रयोग को अस्वीकार किया है, विशेष रूप से ''यौन अपराधों तथा लैंगिक न्याय'' से संबंधित मामलों में।

i. ***अपर्णा भट्ट बनाम मध्य प्रदेश राज्य***[14]***,*** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि न्यायालयों को पीड़िता के ''वस्त्र, जीवन–शैली, वैवाहिक स्थिति अथवा यौन इतिहास'' से संबंधित रूढ़िबद्ध धारणाओं से बचना चाहिए। न्यायालय ने स्पष्ट किया कि ऐसे कारक ''सहमति अथवा साक्ष्य की विश्वसनीयता के निर्धारण के लिए अप्रासंगिक'' हैं तथा न्यायिक संवेदनशीलता के लिए आवश्यक प्रशिक्षण पर बल दिया। न्यायालय ने यह भी कहा कि ''रूढ़िबद्ध धारणाओं पर आधारित न्यायिक टिप्पणियाँ'' निष्पक्षता तथा पीड़िता के न्याय–व्यवस्था में विश्वास को कमजोर करती हैं। अतः न्यायालयों को ''निष्पक्षता बनाए रखते हुए बाहरी सामाजिक धारणाओं एवं पूर्वाग्रहों से बचना चाहिए।''

ii. ***संघमित्रा बनाम राज्य***[15]***,*** में यह और स्पष्ट किया गया कि किसी व्यक्ति की ''पेशेवर पहचान अथवा लिंग'' न्यायिक अनुमान का आधार नहीं बन सकता। यौन इतिहास तथा चरित्र–आधारित तर्कों को अस्वीकार करने के सिद्धांत को ''वैधानिक एवं न्यायशास्त्रीय विकास'' के माध्यम से और अधिक सुदृढ़ किया गया है। ''कलंककारी एवं अपमानजनक भाषा'' की न्यायिक निंदा ***बोधिसत्व गौतम बनाम सुभ्रा चक्रवर्ती***[16] के मामले में भी दिखाई देती है, जिसमें यौन हिंसा की गंभीरता तथा पीड़ितों पर सामाजिक पूर्वाग्रहों के प्रभाव को संबोधित किया गया। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***अपर्णा भट्ट*** मामले में आगे स्पष्ट किया कि वस्त्र अथवा पूर्व यौन आचरण से सहमति का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। न्यायालय ने च्छी महिला/बुरी महिला जैसी द्विआधारी एवं रूढ़िबद्ध धारणा को अस्वीकार किया।

संवैधानिक न्यायशास्त्र ने वैवाहिक एवं लैंगिक भूमिकाओं को नियंत्रित करने वाले कानूनों में निहित रूढ़िबद्ध धारणाओं को भी समाप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ***जोसेफ शाइन बनाम भारत संघ***[17] के मामले में धारा 497, भारतीय दंड संहिता को महिलाओं को निष्क्रिय एवं

14. Supra

15. 2024 DHC 2524.

16. (1996) 1 SCC 490

17. (2019) 3 SCC 39.

अधीनस्थ मानने तथा इस प्रकार संविधान के अनुच्छेद 14 और 15 का उल्लंघन करने के कारण निरस्त कर दिया गया। इसी प्रकार, ***शायरा बानो बनाम भारत संघ***[18], में तीन तलाक की प्रथा को लैंगिक असमानता को बनाए रखने के कारण अमान्य घोषित किया गया। वहीं, ***नवतेज सिंह जौहर बनाम भारत संघ***[19], में यह प्रतिपादित किया गया कि विषमलैंगिकता–आधारित लैंगिक भूमिकाओं को लागू करने वाले कानून असंवैधानिक हैं। इस प्रकार, रूढ़िबद्ध धारणाओं के विरुद्ध न्यायशास्त्र को समानता तथा निजता के अधिकारों में आधार प्रदान किया गया है। ***यशपाल बनाम हरियाणा राज्य***[20], में पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय ने स्वीकार किया कि आपराधिक कानून पुरुषों और महिलाओं की यौन स्वायत्तता के संबंध में भिन्न मानदंडों को लागू करने का माध्यम नहीं बन सकता।

प्रक्रियात्मक संरक्षण भी रूढ़िबद्ध धारणाओं के विरुद्ध इसी दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित करते हैं। ***स्टेट ऑफ पंजाब बनाम गुरमीत सिंह***[21], में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बंद न्यायालय में विचारण (Camera Trials) की प्रासंगिकता पर बल दिया, ताकि पीड़िता की प्रतिष्ठा को होने वाली क्षति तथा सामाजिक कलंक से बचाया जा सके। कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न अधिनियम, 2013 भी अपमानजनक अथवा रूढ़िबद्ध प्रश्नों से संरक्षण को संस्थागत रूप प्रदान करता है। इस प्रकार के उल्लंघनों को संविधान के अनुच्छेद 14, 15 और 21 में निहित मौलिक अधिकारों से संबंधित माना गया है। अंतरराष्ट्रीय दिशा–निर्देश, जिनमें महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन पर अभिसमय (CEDAW) आधारित सिद्धांत तथा दक्षिण और दक्षिण–पूर्व एशिया में लैंगिक दृष्टिकोण को लागू करने संबंधी न्यायाधीशों के लिए बैंकॉक सामान्य दिशा–निर्देश, 2022 शामिल हैं, जिनका उल्लेख अपर्णा भट्ट मामले में भी किया गया है, न्यायाधीशों को वास्तविक पीड़िता के संबंध में कठोर एवं रूढ़िबद्ध धारणाओं से बचने तथा परिस्थितियों के अनुरूप संवेदनशील मूल्यांकन अपनाने का निर्देश देते हैं।

रूढ़िबद्ध धारणाओं के विरुद्ध न्यायशास्त्र का विकास पूर्ववर्ती न्यायिक निर्णयों को स्पष्ट रूप से निरस्त किए जाने से भी चिह्नित होता है। ***जोसेफ शाइन***[22]***,*** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***सोमित्री विष्णु बनाम भारत संघ***[23]***,*** के निर्णय को निरस्त करते हुए महिलाओं को पति की संपत्ति मानने वाली धारणाओं को अस्वीकार किया।

---

18. (2017) 9 SCC 1.
19. (2018) 10 SCC 1.
20. CRWP/4660/2021. (2024: PHHC:118245-DB
21. Supra
22. Supra
23. AIR 1985 SC 1618.

इसी प्रकार, ***नवतेज सिंह जौहर*** [24], मामले में ***सुरेश कुमार कौशल बनाम नाज़ फाउंडेशन***[25]***,*** के निर्णय को निरस्त करते हुए यह स्थापित किया गया कि संवैधानिक नैतिकता उन पुरानी सामाजिक मान्यताओं पर प्रभावी होगी, जो लैंगिक एवं यौन रूढ़िबद्ध धारणाओं को लागू करती हैं।

24. (2017 1 SCC 791

25. (2014) 1 SCC 1.

निर्णयों में लैंगिक/रूढ़िबद्ध भाषा एवं उसके विकल्प

भारत में न्यायाधीशों के लिए लंबे समय से यह चिंता का विषय रहा है कि मामलों का निर्णय करते समय पुरुषत्व (Masculinity) अथवा पुरुष–प्रधान दृष्टिकोण को निर्णय के आधार या तर्क के रूप में स्वीकार न किया जाए। यह एक गलत धारणा है कि पुरुषत्व कोई स्वाभाविक एवं सार्वभौमिक घटना है– ऐसी धारणा का न्यायाधीश अब सक्रिय रूप से सामना कर रहे हैं। इसलिए, संवेदनशील न्यायिक भाषा केवल शिष्टाचार का विषय नहीं है, बल्कि न्यायिक निर्णय में निष्पक्षता, गरिमा और तटस्थता सुनिश्चित करने के लिए अत्यंत आवश्यक है।

संवेदनशीलता की आवश्यकता उन मामलों में और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है, जिनमें महिलाएँ और बच्चे शामिल होते हैं, विशेष रूप से यौन हमले, घरेलू हिंसा, उत्पीड़न तथा दुर्व्यवहार जैसे अपराधों की बढ़ती घटनाओं को देखते हुए। भारत में महिलाएँ अभी भी व्यवस्थित भेदभाव, यौन हिंसा, घरेलू हिंसा तथा उत्पीड़न का सामना कर रही हैं। ऐसी परिस्थितियों में न्यायालयीन कार्यवाही के दौरान की गई असंवेदनशील टिप्पणियाँ अथवा रूढ़िबद्ध धारणाओं पर आधारित न्यायिक निर्णय पीड़िताओं को अपराध की शिकायत करने अथवा न्यायिक प्रक्रिया में भाग लेने से हतोत्साहित कर सकते हैं। अचेतन अवस्था में पाई गई महिलाओं से संबंधित यौन हमले के मामलों में न्यायिक दृष्टिकोण ने कई बार तथाकथित "बलात्कार संबंधी मिथकों" को पुनः स्थापित किया है और अभियुक्त के आचरण पर ध्यान केंद्रित करने के बजाय पीड़िताओं की विश्वसनीयता पर प्रश्न उठाए हैं।[26] ऐसी भाषा उत्तरजीवियों को पुनः मानसिक आघात पहुँचा सकती है और न्याय को बढ़ावा देने के बजाय सामाजिक पूर्वाग्रहों को और मजबूत कर सकती है।

चूँकि न्यायालयों को संवैधानिक मूल्यों के संरक्षण का दायित्व सौंपा गया है, इसलिए न्यायाधीशों का यह कर्तव्य है कि वे ऐसी भाषा का प्रयोग करें जो सम्मानजनक, तटस्थ तथा रूढ़िबद्ध धारणाओं से मुक्त हो। संवेदनशील न्यायिक अभिव्यक्ति जनता के न्याय–व्यवस्था में विश्वास को सुदृढ़ करती है, संवेदनशील एवं असुरक्षित व्यक्तियों की गरिमा की रक्षा करती है तथा यह सुनिश्चित करती है कि न्याय व्यवस्था समानता और मानवाधिकारों के सिद्धांतों को प्रतिबिंबित करे।

26. Elizabeth A Sheehy, "Judges and the Reasonable Steps Requirement: The Judicial Stance on Perpetration Against Unconscious Women" in SEXUAL ASSAULT IN CANADA: LAW, LEGAL PRACTICE AND WOMEN'S ACTIVISM (University of Ottawa Press, 2012) 483 at 483–485.7

फूल सिंह बनाम हरियाणा राज्य[27], के मामले में, यदि निर्णय में प्रयुक्त शब्दों तथा दंडादेश निर्धारित करने के तरीके को लैंगिक न्याय के दृष्टिकोण से देखा जाए, तो कुछ महत्वपूर्ण चिंताएँ सामने आती हैं। अपराध के अभियुक्त के संबंध में यह कहा गया कि वह "यौन तनाव" से प्रेरित था। आज के संदर्भ में इस प्रकार की अभिव्यक्ति तथा अन्य समान शब्दों को अनुचित एवं असंवेदनशील माना जा सकता है। समकालीन न्यायशास्त्र में लैंगिक मामलों से संबंधित निर्णयों के लेखन में संवेदनशील एवं सम्मानजनक अभिव्यक्तियों का प्रयोग एक महत्वपूर्ण घटक बन गया है।

निम्नलिखित शब्दावली 125 विचारण न्यायालयों के निर्णयों के विश्लेषण के पश्चात तैयार की गई है। इसमें कुछ ऐसे सामान्य शब्दों को भी शामिल किया गया है, जो रूढ़िबद्ध धारणाओं को प्रतिबिंबित करते हैं और जिनके प्रयोग से बचा जाना चाहिए। यह शब्दावली इन निर्णयों में पाए गए समस्यात्मक अथवा अप्रचलित वाक्यांशों को रेखांकित करती है तथा उनके स्थान पर ऐसे तटस्थ एवं विधिक संदर्भ के अनुकूल वैकल्पिक शब्दों का सुझाव देती है, जिनका न्यायिक लेखन में प्रयोग किया जा सकता है।

पारंपरिक/समस्यात्मक वाक्यांश	**तटस्थ एवं कानूनी रूप से उपयुक्त विकल्प**
महिलाओं का शरीर खेल की वस्तु	शिकायतकर्ता/ उत्तरजीवी की शारीरिक स्वायत्तता का उल्लंघन
असहाय महिला	उत्तरजीवी / शिकायतकर्ता
जहाँ महिलाओं का सम्मान होता है, वहाँ देवता प्रसन्न होते हैं	धार्मिक/सांस्कृतिक संदर्भों से बचें; महिलाओं के कानूनी अधिकारों और गरिमा पर ध्यान केंद्रित करें
यह एक असहाय महिला की आत्मा को पूरी तरह नष्ट कर देता है	अपराध के कारण उत्तरजीवी को गंभीर मानसिक आघात पहुँचा
पीड़ितीकरण, आत्मा का नष्ट होना	उत्तरजीवी को क्षति और आघात का अनुभव हुआ

27. (1979) 4 SCC 413.

पारंपरिक/समस्यात्मक वाक्यांश	तटस्थ एवं कानूनी रूप से उपयुक्त विकल्प
महिला सदस्य/व्यक्ति (पीड़ितों के लिए)	पीड़िता / उत्तरजीवी / शिकायतकर्ता
गोल्ड डिगर (आर्थिक उद्देश्य)	अटकलों से बचें; साक्ष्यों पर ध्यान दें
मनोवैज्ञानिक न्यूरोसिस से पीड़ित	उत्तरजीवी को आघात/मानसिक कष्ट का अनुभव हो सकता है
गैर–अनुमेय/रूढ़िवादी समाज में महिला	रूढ़िवादी समाज में व्यक्ति
महिलाओं को स्वतंत्र रूप से चलने दें	सभी व्यक्तियों को स्वतंत्र और सुरक्षित रूप से आने–जाने का अधिकार है
स्वाभिमानी महिला	महिला के लिए किसी विशेष विशेषण का प्रयोग आवश्यक नहीं
गरीब असहाय नाबालिग लड़की	नाबालिग पीड़िता / बाल उत्तरजीवी
हार्मोनल परिवर्तन, इच्छा, प्रलोभन	जब तक बिल्कुल आवश्यक न हो, शारीरिक/जैविक कारणों की व्याख्या से बचें
वह बहला–फुसलाकर ले जाई गई (सद्भावना से)	विश्वास हासिल करके आरोपी द्वारा पीड़िता को बहला–फुसलाकर/अपहरण कर ले जाना
सम्मान, शर्म	"सम्मान"/"शर्म" जैसे शब्दों से बचें; उत्तरजीवी के अधिकारों पर ध्यान दें
किसी अन्य व्यक्ति की वासना की पीड़िता	यौन उत्पीड़न/हिंसा की पीड़िता/उत्तरजीवी
कलंक को अपरिहार्य परिणाम के रूप में देखना	न्याय और पुनर्वास पर ध्यान दें
शील भंग किया	यौन उत्पीड़न/शारीरिक स्वायत्तता का उल्लंघन
महिला के रूप में गंभीर स्वास्थ्य परिणाम	पीड़ित/उत्तरजीवी के लिए गंभीर स्वास्थ्य परिणाम

पारंपरिक/समस्यात्मक वाक्यांश	तटस्थ एवं कानूनी रूप से उपयुक्त विकल्प
लड़की के जीवन पर स्थायी प्रभाव	उत्तरजीवी को निरंतर सहायता की आवश्यकता हो सकती है; सुधार/पुनर्प्राप्ति पर ध्यान दें
उसकी पवित्रता खो गई	उत्तरजीवी की शारीरिक स्वायत्तता का उल्लंघन हुआ
कोई हंगामा या रोना नहीं किया, शांतिपूर्वक यात्रा की (घटना के बाद पीड़िता के व्यवहार का वर्णन करने के लिए)	पीड़िता को दोष देने से बचें; तथ्यों पर ध्यान दें
भोली या आज्ञाकारी बेटी	नाबालिग / बाल पीड़िता
वह सहमति देने वाली पक्षकार थी	नाबालिगों के लिए सहमति कानूनी रूप से मान्य नहीं है
पढ़ाया–लिखाया बच्चा	बाल गवाह; प्रभाव के बारे में अनुमान लगाने से बचें
पवित्रता को बिगाड़ने का प्रयास	यौन उत्पीड़न/स्वायत्तता का उल्लंघन
वासना से प्रेरित	यौन हिंसा; अपराध को "वासना" के आधार पर परिभाषित करने से बचें
वेश्यावृत्ति करने वाली	पीड़िता / उत्तरजीवी / शिकायतकर्ता
असहाय महिला की आत्मा को अपमानित/नष्ट करना	उत्तरजीवी को गंभीर हानि पहुँचाता है
उसका बचपन बर्बाद कर दिया / जीवन बर्बाद कर दिया	अपराध के गंभीर परिणाम हुए; सहायता और सहयोग पर ध्यान दें
नाबालिग लड़की/बच्चा	बाल पीड़िता / उत्तरजीवी
अपनी अवैध वासना को संतुष्ट करना	यौन उत्पीड़न किया / कानून का उल्लंघन किया

पारंपरिक/समस्यात्मक वाक्यांश	तटस्थ एवं कानूनी रूप से उपयुक्त विकल्प
जीवन भर उसका पीछा करना/सताते रहना	उत्तरजीवी को निरंतर चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है
शारीरिक संबंध (बलात्कार/हमले के लिए)	यौन उत्पीड़न / बलात्कार (यदि कृत्य बिना सहमति के हो और/या पीड़िता नाबालिग हो)
कपड़े उतारना (जब तक कानून में इसका प्रावधान न हो)	जबरन कपड़े उतारना (यौन उत्पीड़न का हिस्सा)
परिवार की प्रतिष्ठा और सामाजिक स्थिति दाँव पर है	पीड़ित/उत्तरजीवी को हुई हानि पर ध्यान दें; "सम्मान" के आधार पर शर्मिंदा करने से बचें
छोड़े गए निशान जीवन भर बने रहेंगे	उत्तरजीवी को निरंतर सहायता की आवश्यकता हो सकती है; पुनर्प्राप्ति पर ध्यान दें
असहाय महिला	उत्तरजीवी
उसका निजी अंग/छाती/योनि, पीड़ित लड़की	तटस्थ चिकित्सकीय/कानूनी शब्दों का प्रयोग करें; बच्चे/उत्तरजीवी के संदर्भ में उल्लेख करें
आरोपी ने अपनी पोती जैसा व्यवहार किया	उम्र के अंतर और शक्ति–संबंधों पर ध्यान दें, पारिवारिक संबंध पर नहीं
जीवन बर्बाद, विश्वासघात, शर्मनाक आचरण	उत्तरजीवी को गंभीर हानि का अनुभव हुआ
शील / लज्जा	शारीरिक स्वायत्तता
सम्मान/गरिमा को ठेस पहुँचाना	उत्तरजीवी की शारीरिक स्वायत्तता और अधिकारों का उल्लंघन
बालिका अतिसंवेदनशील है	सभी बच्चे कानून के तहत संरक्षण के हकदार हैं

पारंपरिक/समस्यात्मक वाक्यांश	तटस्थ एवं कानूनी रूप से उपयुक्त विकल्प
यौन गुलाम	उत्तरजीवी को बार–बार यौन हिंसा/शोषण का सामना करना पड़ा और उसे नियंत्रण में रखा गया
वेश्यालय संचालक	मानव तस्करी/यौन शोषण का अपराधी (यदि कानूनन आवश्यक हो तो "वेश्यालय" शब्द का प्रयोग किया जा सकता है)
उत्कृष्ट चरित्र (पीड़िता का चरित्र)	यौन अपराधों में चरित्र संबंधी साक्ष्य अप्रासंगिक हैं
वासना की संतुष्टि	यौन हिंसा/हमले का कृत्य; अपराध को तुच्छ बनाने से बचें
अशिक्षित/देहाती गवाह	गवाह (शिक्षा का उल्लेख केवल तभी करें जब वह कानूनी रूप से प्रासंगिक हो)
वेश्या (अपमानजनक शब्द)	उत्तरजीवी / पीड़िता
भावनाओं पर नियंत्रण रखने में असमर्थता, पुरुष–प्रधान समाज	अपराध को उचित ठहराने से बचें; जवाबदेही/कानून पर ध्यान दें

कई मामलों में न्यायालयों को ऐसी परिस्थितियों से निपटना पड़ता है, जहाँ व्यक्ति अपने पति या पत्नी के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति के साथ संबंध में होते हैं। औपचारिक रूप से विवाह न करने वाले व्यक्तियों के बीच ''सहजीवन संबंध'' को भी अब कुछ हद तक सामाजिक एवं विधिक मान्यता प्राप्त हुई है।

ऐसी परिस्थितियों में, विशेष रूप से महिलाओं के संदर्भ में ''उपपत्नी, रखैल, रखी हुई महिला'' जैसे शब्दों के प्रयोग से बचना चाहिए। इनके स्थान पर ''साथी'' शब्द का प्रयोग अधिक उपयुक्त होगा, जो समान–लैंगिक संबंधों पर भी समान रूप से लागू हो सकता है। अन्यथा, महिलाओं के संदर्भ में ''प्रेमिका'' शब्द का प्रयोग भी किया जा सकता है।

''वेश्या, कॉल गर्ल, पतिता तथा एस्कॉर्ट'' जैसे शब्द सामान्य बोलचाल में व्यापक रूप से प्रयुक्त होते हैं, किंतु इनके स्थान पर ''यौनकर्मी'' शब्द का प्रयोग किया जाना अधिक उपयुक्त है, क्योंकि यह अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा भी अधिक स्वीकृत एवं मान्य शब्दावली है। तथापि, ''वेश्या'' शब्द का प्रयोग केवल उन परिस्थितियों में किया जाना चाहिए, जहाँ किसी वैधानिक प्रावधान के कारण उसका प्रयोग आवश्यक हो।

भिन्न यौन अभिविन्यास अथवा लैंगिक पहचान वाले व्यक्तियों के लिए ''एलजीबीटीक्यूआईए+'' एक व्यापक सामूहिक पद है। ''समलैंगिक'' शब्द सामान्यतः प्रचलित है, किंतु इसके स्थान पर ''गे'' शब्द का प्रयोग किया जा सकता है। महिलाओं के लिए ''लेस्बियन'' शब्द अभी भी स्वीकार्य है। ''तृतीय लिंग'' के संदर्भ में उत्तर भारत में ''हिजड़ा'' शब्द का प्रयोग किया जाता है। तमिलनाडु में ''तिरुनंगई'' शब्द का प्रयोग ट्रांसजेंडर महिला तथा ''तिरुनंबी'' शब्द का प्रयोग ट्रांसजेंडर पुरुष के लिए किया जाता है। कर्नाटक में लैंगिक विविधता वाले समुदायों के लिए ''जोगप्पा'' शब्द का प्रयोग किया जाता है। ऐसे शब्द कई संदर्भों में अपमानजनक अथवा कलंककारी अर्थ ग्रहण कर सकते हैं। वर्तमान में ''इंटरसेक्स'' शब्द को अधिक स्वीकार्य एवं गरिमापूर्ण माना जाता है। न्यायालयीन भाषा में उपयुक्त एवं सम्मानजनक शब्दावली का प्रयोग किया जाना उचित होगा। वर्तमान में ''यौन अभिविन्यास, लैंगिक पहचान, लैंगिक अभिव्यक्ति तथा लैंगिक विशेषताओं'' के लिए प्रयुक्त संक्षिप्त पद ''एसओजीआईईएससी'' SOGIESC (An acronym for sexual orientation, gender identity, expression and sex characteristics) भी धीरे–धीरे स्वीकार्यता प्राप्त कर रहा है।

इस संदर्भ में यूनिसेफ द्वारा लैंगिक समानता पर प्रकाशित शब्दों एवं अवधारणाओं की शब्दावली Glossary of terms and concepts' https://www.unicef.org/rosa/media/1761/file/Genderglossarytermsandconcepts.pdf) का संदर्भ लेना उपयोगी होगा। इसमें विश्व के विभिन्न क्षेत्रों की संवेदनशीलताओं को ध्यान में रखते हुए विस्तृत शब्दावली प्रस्तुत की गई है।

भारतीय न्यायपालिका पारंपरिक ''अभियुक्त–केंद्रित व्यवस्था'' से ऐसी न्याय व्यवस्था की ओर अग्रसर हो रही है, जिसमें ''पीड़ित–केंद्रित दृष्टिकोण'' अपनाया जाता है। इसमें पीड़ितों की निजता, गरिमा तथा मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा पर विशेष बल दिया जाता है। इसका उद्देश्य ''द्वितीयक पीड़ितीकरण'' को कम करना तथा पीड़ितों के पूर्ण पुनर्वास तक उन्हें आवश्यक सहयोग प्रदान करना है। यह दृष्टिकोण केवल अपराधियों को दंडित करने से आगे बढ़कर पीड़ितों को ''मानसिक आघात से उबरने तथा पुनः सामान्य जीवन प्राप्त करने में सहायता'' प्रदान करने की दिशा में परिवर्तन को दर्शाता है। ''पीड़ित प्रतिकर योजना, 2018'' (परिशिष्ट–II) इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण है तथा विभिन्न कल्याणकारी विधियों में भी इस संबंध में आवश्यक प्रावधान किए गए हैं।

जब इस प्रकार का मामला ''सत्र न्यायाधीश अथवा न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय'' के समक्ष पहुँचता है, तब पीठासीन अधिकारी को विवेचक से यह पूछना चाहिए कि ***''दिल्ली डोमेस्टिक वर्किंग वूमेन्स फोरम बनाम भारत संघ''***[28] में दिए गए निर्देशों के अनुसार पीड़िता को ''विधिक सहायता'' उपलब्ध कराई गई है या नहीं। पुलिस का यह भी कर्तव्य है कि पीड़िता से पूछताछ करने से पूर्व उसे न्यायालयीन कार्यवाही में ''प्रतिनिधित्व प्राप्त करने के उसके अधिकार'' के बारे में सूचित करे तथा अपनी रिपोर्ट में भी इसका उल्लेख करे।

इन निर्देशों के अनुसार विवेचक के लिए यह सुनिश्चित करना अनिवार्य है कि ''प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज किए जाने के समय से लेकर मामले के अंतिम निस्तारण तक बलात्कार की पीड़िता को आवश्यक सहायता एवं संरक्षण प्राप्त हो।'' इस व्यवस्था को अन्य गंभीर अपराधों के पीड़ितों तक भी विस्तारित किया जा सकता है।

यदि पीड़िता को विधिक सहायता उपलब्ध नहीं कराई गई है, अथवा उसने निजी रूप से कोई अधिवक्ता नियुक्त नहीं किया है, अथवा पीठासीन अधिकारी विवेचक द्वारा दिए गए उत्तर से संतुष्ट नहीं है, तो न्यायालय संबंधित ''जिला विधिक सेवा प्राधिकरण'' को आवश्यक कार्रवाई करने का निर्देश दे सकता है। न्यायालय विवेचक के वरिष्ठ अधिकारी को भी इन निर्देशों के अनुपालन को सुनिश्चित करने का निर्देश दे सकता है तथा विवेचक से 48 घंटे के भीतर लिखित अनुपालन रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए कह सकता है।

---

28. (1995) 1 SCC 14.

जिले में यौन हमले के पीड़ितों की सहायता के लिए पुलिस थानों के स्तर पर अधिवक्ताओं के पैनल की मासिक समीक्षा की व्यवस्था भी उपयोगी हो सकती है। इसके लिए प्रधान जिला एवं सत्र न्यायाधीश, पुलिस अधीक्षक तथा जिला विधिक सेवा प्राधिकरण के सचिव की मासिक बैठक के माध्यम से व्यवस्था की निगरानी की जा सकती है। वैकल्पिक रूप से, पुलिस अधीक्षक द्वारा प्रधान जिला एवं सत्र न्यायाधीश को ''मासिक लिखित रिपोर्ट'' भेजी जा सकती है, जिससे इस व्यवस्था का समुचित अनुपालन सुनिश्चित हो सके।

पीड़ित/साक्षी संरक्षण के उपाय

पीठासीन अधिकारी को पीड़ित अथवा संवेदनशील साक्षी द्वारा आवेदन किए जाने की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि पीड़ित एवं साक्षी की सुरक्षा सुनिश्चित करना पीठासीन अधिकारी का विधिक दायित्व है। ***महेंद्र चावला बनाम भारत संघ***[29], में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भारत सरकार के गृह मंत्रालय द्वारा तैयार ''साक्षी संरक्षण योजना, 2018'' को अनुमोदित किया। इस योजना के अंतर्गत खतरे की गंभीरता के आधार पर साक्षियों को ''श्रेणी 'क', 'ख' और 'ग''' में वर्गीकृत किया गया है। ***साक्षी बनाम भारत संघ***[30]***,*** के मामले में यौन अपराधों से संबंधित मामलों में साक्ष्य दर्ज करने के लिए ''पीड़ित–केंद्रित तथा बाल–अनुकूल दृष्टिकोण'' को स्वीकार किया गया।

विचारण–पूर्व पीड़िता की परामर्श सेवा

यह पीड़िता की चिंता को कम करने तथा उसके आत्मविश्वास को बढ़ाने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। विचारण न्यायाधीशों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि पीड़िताओं को ऐसी परामर्श सेवा उपलब्ध हो।

बंद न्यायालय में विचारण

यौन अपराधों तथा संवेदनशील मामलों का विचारण बंद न्यायालय में किया जाना चाहिए। भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 की धारा 366(1) के अनुसार किसी अपराध के विचारण के लिए न्यायालय सामान्यतः जनता के लिए खुला रहेगा। इसका अपवाद उपधारा (2) में प्रदान किया गया है। बलात्कार अथवा भारतीय न्याय संहिता के धारा 64, 65, 66, 67, 68, 70 या 71 के

---

29. (2019) 14 SCC 615.

30. (2004) 5 SCC 518.

अंतर्गत आने वाले अपराधों तथा ''लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 4, 6, 8 और 10 के अंतर्गत आने वाले अपराधों का विचारण बंद न्यायालय में किया जाना है। यद्यपि ऐसे मामलों से संबंधित सामग्री के मुद्रण अथवा प्रकाशन पर प्रतिबंध है, तथापि नाम एवं पहचान की गोपनीयता बनाए रखते हुए विधि द्वारा निर्धारित परिस्थितियों में उसका प्रकाशन किया जा सकता है। पीड़िता की पहचान किसी भी कार्यवाही में प्रकट नहीं की जानी चाहिए तथा केवल उसके नाम के प्रारंभिक अक्षरों अथवा छद्म नाम का प्रयोग किया जाना चाहिए, जैसा कि ***निपुण सक्सेना बनाम भारत संघ*** [31], में प्रतिपादित किया गया है।

साक्षी को अतिथि के रूप में सम्मान

न्याय प्राप्ति की प्रक्रिया में साक्षी अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं और न्यायालय द्वारा उनके साथ ''अतिथि के समान सम्मानजनक व्यवहार'' किया जाना चाहिए। इसके विपरीत, अनेक साक्षियों को न्यायालयों में लंबे समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है तथा उन्हें उचित व्यवहार नहीं मिलता, जिसके कारण वे साक्ष्य देने से हतोत्साहित हो सकते हैं। न्यायालयों को साक्षियों के साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार करना चाहिए तथा उनकी आवश्यकताओं का ध्यान रखना चाहिए। भारतीय न्यायालयों में साक्षियों को होने वाली कठिनाइयों का वर्णन माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***उत्तर प्रदेश राज्य बनाम शंभूनाथ सिंह*** [32], के मामले में किया है।

"भारत में साक्षियों को न्यायालय से समन प्राप्त होने पर इस कारण भय नहीं लगता कि उन्हें न्यायालय में परीक्षण या प्रतिपरीक्षण का सामना करना पड़ेगा, बल्कि उन्हें इस बात का भय रहता है कि कई दिनों तक उनका परीक्षण ही नहीं होगा और उन सभी दिनों में उन्हें अपने परीक्षण की प्रतीक्षा करते हुए न्यायालय परिसर में बैठे रहना पड़ेगा। साक्षी अपना व्यवसाय छोड़कर न्यायालय आते हैं और घंटों प्रतीक्षा करते रहते हैं तथा दिन के अंत में उन्हें अगले दिन पुनः आने के लिए कह दिया जाता है। इस प्रकार प्रतीक्षा करते रहना भारत के अनेक न्यायालयों में साक्षियों की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। अब समय आ गया है कि विचारण न्यायालय साक्षियों को ऐसे अतिथियों के रूप में मानें, जिन्हें समन के माध्यम से न्यायालय की सहायता के लिए बुलाया जाता है, ताकि उनके साक्ष्य के आधार पर न्यायिक निष्कर्ष तक पहुँचा जा सके। विडंबना यह है कि साक्षियों की स्थिति स्वयं वादकारियों से भी अधिक दयनीय होती है। इस मामले से यह स्पष्ट होता है कि सत्र न्यायालय में कई दिनों तक उपस्थित रहने के बावजूद साक्षियों का पूर्ण परीक्षण नहीं किया गया। ऐसे साक्षियों के परीक्षण को टालने में सफल पक्ष को अंततः इसका

31. (2019) 2 SCC 703.

32. 2001(4) SCC 667.

लाभ मिला और सत्र न्यायालय ने साक्ष्य के अभाव में उन्हें दोषमुक्त कर दिया। इस पूरी प्रक्रिया में एकमात्र क्षति आपराधिक न्याय की हुई।[33]

यह सिद्धांत आपराधिक मामलों में और अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि ऐसे अधिकांश मामलों का निर्णय साक्षियों, विशेष रूप से प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों, के साक्ष्य के आधार पर किया जाता है, जिन्होंने वास्तविक घटना अथवा अपराध को देखा हो।

पुनः पीड़ितीकरण की रोकथाम

पुनः पीड़ितीकरण, विशेष रूप से यौन अपराध, घरेलू हिंसा, बाल दुर्व्यवहार, कार्यस्थल पर उत्पीड़न तथा लैंगिक हिंसा से संबंधित मामलों में, मूल घटना के बाद असंवेदनशील संस्थागत, विधिक, चिकित्सकीय, सामाजिक अथवा अन्वेषणात्मक प्रक्रियाओं के कारण उत्तरजीवियों द्वारा बार–बार झेले जाने वाले मानसिक आघात को संदर्भित करता है। न्यायाधीशों को रूढ़िबद्ध अथवा दोषारोपण करने वाले प्रश्न पूछने से बचना चाहिए तथा पीड़ितों को अभियुक्तों के साथ अनावश्यक रूप से संपर्क करने के लिए बाध्य नहीं करना चाहिए। न्यायाधीश की सक्रिय भूमिका पीड़ितों के लिए अधिक सुरक्षित वातावरण का निर्माण करती है। इसे आघात–संवेदी न्यायिक दृष्टिकोण अपनाकर, बार–बार पूछताछ से बचकर, गोपनीयता बनाए रखकर तथा स्पष्ट संवाद के माध्यम से और अधिक प्रभावी ढंग से रोका जा सकता है। न्यायालयों में स्पष्ट एवं व्यापक नीतियाँ तथा सुलभ सहायता–प्रणाली उपलब्ध होनी चाहिए। पीड़ितों के संबंध में सामाजिक कलंक एवं भ्रांतियों को कम करने के लिए जन–जागरूकता एवं शिक्षा अभियान भी चलाए जाने चाहिए। लैंगिक एवं नैतिकतावादी टिप्पणियों पर कड़ा प्रतिबंध" होना चाहिए।

अपर्णा भट्ट बनाम मध्य प्रदेश [34]***,*** राज्य में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायाधीशों को रूढ़िबद्ध प्रश्न पूछने से विरत रहने का निर्देश दिया। न्यायिक आदेशों में पीड़िता को दोषी ठहराने वाली भाषा का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए और जमानत की ऐसी शर्तें भी नहीं लगाई जानी चाहिए, जो पीड़िता को अभियुक्त के साथ संपर्क करने के लिए बाध्य करें। न्यायाधीश की सक्रिय भूमिका ही सुरक्षित वातावरण सुनिश्चित कर सकती है।

---

33. 2001(4) SCC 667.
34. Supra

सक्रिय न्यायाधीश एवं प्रतिपरीक्षण

पीड़िता के बयान के दौरान, विशेष रूप से प्रतिपरीक्षण के समय, उसकी सुरक्षा तथा अभियुक्त के अधिकारों के बीच संतुलन बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है। ***साक्षी बनाम भारत संघ*** [35]***,*** के मामले में, लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 के अधिनियमित होने से पूर्व ही, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बाल साक्षियों अथवा संवेदनशील साक्षियों को अभियुक्त के साथ आघातकारी आमना–सामना होने से बचाने के लिए दृश्य–संपर्क माध्यम अथवा पर्दे के पीछे से साक्ष्य दर्ज करने की व्यवस्था स्थापित करने का निर्देश दिया था। न्यायाधीशों को अनुचित प्रश्नों, विशेषकर पीड़िता के यौन इतिहास से संबंधित प्रश्नों पर नियंत्रण रखना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि ऐसे प्रश्न केवल तभी पूछे जाएँ जब उनका पूछा जाना "अति आवश्यक" हो।

भारत में लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम तथा बाल संरक्षण कानून

अधिनियम की धारा 24 के अनुसार बालक का पूर्व–दर्ज कथन किसी महिला पुलिस अधिकारी द्वारा बालक के निवास स्थान अथवा बालक की पसंद के किसी स्थान पर दर्ज किया जाना चाहिए तथा इस दौरान बालक को अभियुक्त को देखने की स्थिति में नहीं रखा जाना चाहिए। प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज किए जाने के समय से ही बालक को पुलिस तंत्र, चिकित्सकीय अधिकारियों तथा अस्पतालों के साथ समन्वय स्थापित करने में सहायता देने के लिए सहायक व्यक्ति उपलब्ध कराने का निर्देश माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***बचपन बचाओ आंदोलन बनाम भारत संघ*** [36]***,*** में दिया, ताकि पुनः पीड़ितीकरण को रोका जा सके। इस अधिनियम के अंतर्गत यह भी अनिवार्य किया गया है कि "संज्ञान लिए जाने की तारीख से एक वर्ष के भीतर विचारण पूरा किया जाए। संवेदनशील साक्षी बयान केंद्र (Vulnerable Witness Disposition Center) की स्थापना ने विभिन्न समस्याओं के समाधान को व्यवस्थित किया है तथा इसकी अनेक सराहनीय व्यवस्थाओं को भारतीय न्याय संहिता के अंतर्गत गंभीर अपराधों के विचारण में भी लागू किया जा सकता है।

35. (2004) 5 SCC 518.

36. 2023 SCC Online SC 1031.

विचारणीय बिंदु
(Points for Considerations)

1. तथ्य–आधारित संदर्भ

न्यायिक तर्क ''साक्ष्य पर आधारित'' होना चाहिए, न कि पीड़िता के आचरण अथवा चरित्र के संबंध में रूढ़िबद्ध धारणाओं, अनुमानों या नैतिक अवधारणाओं पर। न्यायालयों को कथन, चिकित्सकीय साक्ष्य, फोरेंसिक सामग्री तथा परिस्थितिजन्य तथ्यों पर निर्भर करना चाहिए।

स्टेट ऑफ पंजाब बनाम गुरमीत सिंह [37], में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यौन अपराधों से संबंधित मामलों में न्यायालयों को ''मिथकों एवं रूढ़िबद्ध धारणाओं से प्रभावित होने के प्रति सावधान'' किया।

2. "शील भंग" जैसे शब्दों के प्रयोग में सावधानी

यद्यपि यह अभिव्यक्ति वैधानिक व्यवस्था का हिस्सा है, फिर भी इसका प्रयोग सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए, क्योंकि यह नैतिकतावादी अथवा पितृसत्तात्मक धारणाओं को प्रतिबिंबित कर सकती है। न्यायिक दृष्टिकोण का केंद्र ''गरिमा, शारीरिक स्वायत्तता तथा व्यक्तिगत अखंडता के उल्लंघन'' पर होना चाहिए।

रूपन देओल बजाज बनाम के.पी.एस. गिल [38], में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने महिला की गरिमा के संदर्भ में ''शील'' की व्याख्या की।

3. आघात–संवेदी भाषा का प्रयोग; प्रतिरोध का अभाव सहमति के समान नहीं

चोटों का अभाव, शिकायत दर्ज करने में विलंब अथवा प्रतिरोध का अभाव ''सहमति का संकेत नहीं है।'' प्रत्येक पीड़ित व्यक्ति आघात की स्थिति में अलग–अलग प्रकार से प्रतिक्रिया कर सकता है। न्यायालयों को पीड़िता के व्यवहार के संबंध में रूढ़िबद्ध अपेक्षाओं के आधार पर प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने से बचना चाहिए।

---

37. (1996) 2 SCC 384,
38. (1995) 6 SCC 194

कैनी राजन बनाम केरल राज्य [39], में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि ''सहमति स्वैच्छिक एवं स्पष्ट होनी चाहिए।''

4. लैंगिक–तटस्थ एवं उत्तरजीवी–केंद्रित शब्दावली

न्यायिक भाषा ''गरिमापूर्ण एवं समावेशी'' होनी चाहिए तथा लैंगिक रूढ़िबद्ध धारणाओं को मजबूत करने से बचना चाहिए। उत्तरजीवी–केंद्रित शब्दावली सभी प्रभावित व्यक्तियों के अनुभवों को मान्यता प्रदान करती है।

नेशनल लीगल सर्विसेज अथॉरिटी बनाम भारत संघ [40], में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सभी लैंगिक पहचानों के लिए ''गरिमा एवं समानता'' के महत्व पर बल दिया।

5. 18 वर्ष से कम आयु के पीड़ितों के लिए "बालक" या "नाबालिग"

लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम के अंतर्गत ''18 वर्ष से कम आयु के प्रत्येक व्यक्ति को विधिक रूप से बालक'' माना गया है। बाल–संवेदी शब्दावली कानून के संरक्षणात्मक ढाँचे को सुदृढ़ करती है।

ईरा बनाम राज्य, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली [41], में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम के ''बाल–केंद्रित उद्देश्य'' को पुनः स्पष्ट किया।

6. "पीड़िता" या "उत्तरजीवी", "अभियोक्त्री" नहीं

''अभियोक्त्री'' शब्द प्रक्रियात्मक एवं अपेक्षाकृत अवैयक्तिक है। इसके स्थान पर ''पीड़िता'' अथवा ''उत्तरजीवी'' जैसे शब्द अधिक संवेदनशील एवं गरिमा–केंद्रित हैं।

अपर्णा भट्ट बनाम मध्य प्रदेश राज्य [42], में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ''लैंगिक–संवेदनशील न्यायिक भाषा'' के महत्व पर बल दिया।

---

39. (2013) 9 SCC 113
40. (2014) 5 SCC 438
41. (2017) 15 SCC 133
42. Supra

7. न्यायिक भाषा बाल–संवेदी होनी चाहिए

न्यायिक भाषा में विशेष रूप से बच्चों से संबंधित मामलों में ''सनसनीखेज, नैतिकतावादी टिप्पणियों अथवा कलंककारी अभिव्यक्तियों'' से बचना चाहिए।

साक्षी बनाम भारत संघ [43], में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने द्वितीयक पीड़ितीकरण को रोकने के लिए ''बाल–संवेदी प्रक्रियाओं'' के महत्व पर बल दिया।

8. स्वायत्तता, सहमति एवं बाल अधिकारों पर ध्यान

न्यायिक तर्क में नैतिकता अथवा पारिवारिक सम्मान की धारणाओं के बजाय ''शारीरिक स्वायत्तता, सूचित सहमति, गरिमा तथा बालक के सर्वोत्तम हित'' को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

सुचित्रा श्रीवास्तव बनाम चंडीगढ़ प्रशासन [44], में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ''व्यक्तिगत स्वायत्तता को संविधान के अनुच्छेद 21 का हिस्सा'' माना।

9. मनोवैज्ञानिक एवं शारीरिक आघात की पहचान

यौन अपराधों के परिणामस्वरूप शारीरिक क्षति के अतिरिक्त दीर्घकालिक ''भावनात्मक एवं मनोवैज्ञानिक आघात'' भी हो सकता है। साक्ष्यों का मूल्यांकन तथा पीड़िता के आचरण का परीक्षण करते समय न्यायालयों को ''आघात–संवेदी दृष्टिकोण'' अपनाना चाहिए।

कर्नाटक राज्य बनाम कृष्णप्पा [45], में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बलात्कार को केवल अपराध न मानकर ''गरिमा एवं मानवाधिकारों का उल्लंघन'' माना।

---

43. (2004) 5 SCC 518

44. (2009) 9 SCC 1

45. (2000) 4 SCC 75

ऐसे शब्द जिनके प्रयोग से बचना चाहिए–

1. पीड़िता को दोषी ठहराने वाली सभी प्रकार की अभिव्यक्तियाँ

पीड़िता को दोषी ठहराना उस ''बलात्कार–संस्कृति'' का हिस्सा है, जिसमें उसके आचरण, जीवन–शैली, वस्त्र, शिकायत में विलंब तथा पूर्व संबंधों पर प्रश्न उठाकर अपराध की जिम्मेदारी पूरी तरह पीड़िता पर डाल दी जाती है।

स्टेट ऑफ पंजाब बनाम गुरमीत सिंह [46]***,*** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सामाजिक रूढ़िबद्ध धारणाओं के आधार पर पीड़िताओं की विश्वसनीयता पर संदेह करने के विरुद्ध सावधान किया।

2. "लज्जाशीलता", "सम्मान" या "पवित्रता" जैसे शब्द

ऐसे शब्द पितृसत्तात्मक विचारों में गहराई से निहित हैं, जो महिला के मूल्य को उसकी ''यौन शुचिता अथवा पारिवारिक प्रतिष्ठा'' से जोड़ते हैं। न्यायालयों को इसके बजाय ''गरिमा, स्वायत्तता तथा संवैधानिक अधिकारों'' पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए।

अपर्णा भट्ट बनाम मध्य प्रदेश राज्य [47]***,*** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायालयों को लैंगिक रूढ़िबद्ध धारणाओं तथा न्यायिक आदेशों में अनुचित टिप्पणियों से बचने का निर्देश दिया।

3. "असहाय महिला" जैसे शब्द

महिलाएँ कमजोर, आश्रित अथवा अपनी इच्छा व्यक्त करने में असमर्थ नहीं होतीं। इस प्रकार की अभिव्यक्ति ''लैंगिक पूर्वाग्रहपूर्ण मानसिकता'' को दर्शाती है। न्यायालयों को महिलाओं को ''समानता एवं गरिमा से युक्त अधिकारधारी व्यक्तियों'' के रूप में देखना चाहिए।

जोसेफ शाइन बनाम भारत संघ [48]***,*** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान के अंतर्गत महिलाओं की ''गरिमा, स्वायत्तता एवं समान स्थिति'' पर बल दिया।

---

46. Supra

47. Supra

48. Supra

4. शिकायतकर्ताओं के संबंध में सामान्यीकृत धारणाएँ

न्यायालयों को यह अनुमान नहीं लगाना चाहिए कि आघात के बाद सभी महिलाएँ अथवा पीड़ित एक समान व्यवहार करते हैं। यौन हिंसा के प्रति प्रत्येक व्यक्ति की प्रतिक्रिया अलग हो सकती है। न्यायिक निष्कर्ष ''व्यक्तिगत तथ्यों एवं साक्ष्य'' पर आधारित होने चाहिए।

भरवाड़ा भोगिनभाई हिरजीभाई बनाम गुजरात राज्य [49], में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यौन हमले की पीड़िताओं के व्यवहार के संबंध में रूढ़िबद्ध धारणाओं को अस्वीकार किया और स्पष्ट किया कि पीड़िता के साक्ष्य को अनिवार्य रूप से पुष्टिकारक साक्ष्य की आवश्यकता नहीं होती। न्यायालय ने यौन हिंसा की रिपोर्ट करने से जुड़े सामाजिक कलंक को भी मान्यता दी।

5. सम्मान, लज्जा एवं शुचिता से संबंधित रूढ़िबद्ध धारणाएँ

ऐसे शब्द भेदभावपूर्ण दृष्टिकोण को प्रदर्शित करते हैं और हिंसा को परिवार की प्रतिष्ठा के विरुद्ध अपराध के रूप में प्रस्तुत करते हैं। न्यायालयों को ''सहमति एवं अधिकारों'' पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए।

महाराष्ट्र राज्य बनाम मधुकर नारायण मर्दीकर [50], में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि ''"सदाचारहीन" मानी जाने वाली महिला भी निजता एवं गरिमा की अधिकारी है।''

6. महिलाओं अथवा परिवारों द्वारा अतिशयोक्ति किए जाने की धारणाएँ

न्यायालयों को केवल इसलिए यह अनुमान नहीं लगाना चाहिए कि यौन अपराध से संबंधित आरोप ''झूठे अथवा बढ़ा–चढ़ाकर लगाए गए हैं।'' ऐसी धारणाएँ पीड़ितों एवं उनके परिवारों के प्रति अविश्वास को बढ़ावा देती हैं।

हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम रघुबीर सिंह [51], में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि ''मामूली असंगतियाँ पीड़िता के कथन के मूल सार को प्रभावित नहीं करनी चाहिए।''

---

49. (1983) 3 SCC 217
50. (1991) 1 SCC 57
51. (1993) 2 SCC 622

7. निर्णयात्मक अथवा यौनिकृत वर्णन

न्यायिक भाषा ''तटस्थ एवं पेशेवर'' रहनी चाहिए तथा उसमें व्यक्ति के रूप–रंग, जीवन–शैली अथवा यौन इतिहास से संबंधित अनावश्यक टिप्पणियाँ नहीं होनी चाहिए।

विशाखा बनाम राजस्थान राज्य* [52]*, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कार्यस्थल तथा सार्वजनिक जीवन में ''गरिमा एवं लैंगिक समानता के संरक्षण'' पर बल दिया।

8. "कामुकता" जैसे शब्द

ऐसे शब्द न केवल एक विशेष दृष्टिकोण को प्रदर्शित करते हैं, बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से पुरुषों की ''अनियंत्रित यौन इच्छा को स्वाभाविक घटना'' के रूप में स्वीकार करने की प्रवृत्ति को भी दर्शाते हैं। इससे अपराध की गंभीरता भी कमतर दिखाई पड़ सकती है। न्यायालयों को इसके स्थान पर ''यौन हमला, यौन हिंसा अथवा अपराध'' जैसे विधिक रूप से सटीक शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।

कर्नाटक राज्य बनाम कृष्णप्पा* [53]*, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बलात्कार को केवल वासना अथवा आवेग से उत्पन्न अपराध न मानकर गरिमा एवं मौलिक अधिकारों का उल्लंघन माना।

9. पक्षपातपूर्ण, रूढ़िबद्ध अथवा दोषारोपण करने वाली भाषा

किसी भी न्यायिक निर्णय की भाषा ''पक्षपात एवं पूर्वाग्रह से मुक्त'' होनी चाहिए। उत्तरजीवी की गरिमा की रक्षा के लिए विशेष सावधानी बरती जानी चाहिए। प्रयुक्त भाषा कभी भी दोषारोपण करने वाली नहीं होनी चाहिए; इसके बजाय वह ''सशक्तकारी'' होनी चाहिए, क्योंकि भाषा सशक्तीकरण का सबसे महत्वपूर्ण माध्यम है।

अपर्णा भट्ट बनाम मध्य प्रदेश* [54]*, राज्य में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने महिलाओं से संबंधित मामलों में न्यायाधीशों को ''पितृसत्तात्मक रूढ़िबद्ध धारणाओं एवं असंवेदनशील टिप्पणियों'' के प्रयोग से विशेष रूप से विरत रहने का निर्देश दिया।

---

52. Supra
53. (2000) 4 SCC 75
54. Supra

प्रशिक्षण एवं संवेदनशीलता

संवेदनशीलता एक निरंतर विकसित होने वाली प्रक्रिया है, जिसे नियमित रूप से सीखना और विकसित करना आवश्यक है। प्रशिक्षण के माध्यम से पीड़ितों, साक्षियों तथा सभी संवेदनशील एवं असुरक्षित समूहों के प्रति संवेदनशीलता विकसित की जा सकती है। प्रथम न्यायाधीश वाद ***एस.पी. गुप्ता बनाम भारत संघ*** [55], में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पीठासीन न्यायाधीश को स्वयं के भीतर स्वतंत्र एवं निष्पक्ष बनाए रखने के लिए प्रशिक्षण एवं आत्म–अनुशासन की आवश्यकता पर विचार करते हुए विचार व्यक्त किया कि,

"न्यायपालिका को वास्तव में स्वतंत्र बनाने के लिए केवल बाहरी उपाय पर्याप्त नहीं हैं। न्यायाधीश को स्वयं अपने भीतर भी स्वतंत्र होना चाहिए। न्यायाधीश एक मानव होता है, जिसमें भावनाएँ, पूर्वाग्रह, पसंद–नापसंद, स्नेह, दुर्भावना, घृणा, तिरस्कार, भय और दुस्साहस जैसी अनेक प्रवृत्तियाँ हो सकती हैं। एक सफल न्यायाधीश बनने के लिए इन प्रवृत्तियों को नियंत्रित एवं अनुशासित करना आवश्यक है। यह केवल शिक्षा, प्रशिक्षण, निरंतर अभ्यास तथा विनम्रता एवं कर्तव्य के प्रति समर्पण के विकास से संभव है। इन गुणों को न तो बाजार से खरीदा जा सकता है और न ही लिखित अथवा अलिखित कानूनों के माध्यम से मानव व्यक्तित्व में आरोपित किया जा सकता है। यदि ये गुण न्यायाधीश में विद्यमान हों, तो संविधान एवं कानून द्वारा प्रदान किए गए किसी भी संरक्षणात्मक उपाय के समाप्त हो जाने पर भी न्यायपालिका की स्वतंत्रता प्रभावित नहीं होगी। इसके विपरीत, सभी संरक्षणात्मक उपाय उपलब्ध होने के बावजूद न्यायाधीश स्वतंत्र न हो, ऐसा संभव है। न्यायपालिका की वास्तविक स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने की क्षमता अंततः न्यायाधीशों की आंतरिक शक्ति में ही निहित है।"

55. 1981 supp SCC 87.

न्यायालयीन कार्यवाही के संबंध में प्रतिक्रिया संबंधी प्रश्नों की रिपोर्ट

1. क्या आप अपने मामले/प्रकरण में न्यायालय में अधिवक्ताओं और न्यायाधीशों द्वारा प्रयुक्त विधिक कार्यवाही तथा भाषा को समझते हैं?

प्रतिक्रियाएँ :

- हाँ : 86.4 %
- नहीं : 7.1 %
- कुछ हद तक : (चार्ट में निर्दिष्ट नही)
- अधिकांश समय : (चार्ट में निर्दिष्ट नही)

अधिकांश उत्तरदाताओं (86.4%) ने बताया कि वे न्यायालय में अधिवक्ताओं एवं न्यायाधीशों द्वारा प्रयुक्त न्यायिक कार्यवाही तथा भाषा को समझते हैं।

2. क्या आपके मामले की न्यायालयीन कार्यवाही के दौरान न्यायाधीश आपको न्यायालय की कार्यवाही सरल एवं समझने योग्य भाषा में समझाते हैं?

प्रतिक्रियाएँ :

- हमेशा : 69.3%
- कभी–कभी : 25.7%
- कभी नहीं : (चार्ट में निर्दिष्ट नहीं)

अधिकांश उत्तरदाताओं (69.3%) ने बताया कि न्यायाधीश हमेशा न्यायालयीन कार्यवाही को सरल एवं समझने योग्य भाषा में समझाते हैं, जबकि (25.7%) उत्तरदाताओं ने बताया कि ऐसा कभी–कभी होता है।

3. क्या आप न्यायालय की कार्यवाही के दौरान न्यायाधीश और अधिवक्ताओं को अपने प्रति संवेदनशील एवं सहानुभूतिपूर्ण पाते हैं?

प्रतिक्रियाएँ :

- सदैव: 59.3%
- कभी नहीं: 9.3%
- अधिकांशतः: 23.6%
- कुछ अवसरों पर: 7.9%

अधिकांश उत्तरदाताओं (59.3%) ने माना कि न्यायाधीश और अधिवक्ता सदैव उनके प्रति संवेदनशील एवं सहानुभूतिपूर्ण रहते हैं, जबकि 23.6% ने बताया कि ऐसा व्यवहार अधिकांशतः देखने को मिलता है।

4. क्या आपको लगता है कि न्यायाधीश आपकी बात सुनते हैं?

प्रतिक्रियाएँ :

- सदैव: 66.4%
- कभी नहीं: (निर्दिष्ट नही)
- अधिकांशतः: 25.7%
- कुछ अवसरों पर: (निर्दिष्ट नहीं)

66.4% उत्तरदाताओं का मानना है कि न्यायाधीश सदैव उनकी बात सुनते हैं, जबकि 25.7 %का अनुभव है कि अधिकांशतः उनकी बात सुनी जाती है।

5. अपने मामले के अनुभव के आधार पर, आपके विचार में पीठासीन अधिकारी (न्यायाधीश) के साथ आपकी बातचीत एवं संवाद को किस प्रकार बेहतर बनाया जा सकता है?

- स्पष्ट एवं सरल भाषा का प्रयोग किया जाए तथा अनावश्यक कानूनी शब्दावली को कम किया जाए।
- पक्षकारों को अपनी समस्याएँ एवं चिंताएँ व्यक्त करने के लिए पर्याप्त समय दिया जाए।

- कार्यवाही में अधिक पारदर्शिता सुनिश्चित की जाए, मामले की प्रगति के संबंध में नियमित जानकारी दी जाए तथा स्थगन के कारणों को स्पष्ट रूप से बताया जाए।
- मामलों, विशेषकर संवेदनशील मामलों, जैसे भारतीय दंड संहिता की धारा 498क तथा घरेलू हिंसा अधिनियम से संबंधित मामलों, का नियमित या यांत्रिक ढंग से निपटारा करने से बचा जाए।
- किसी भी प्रकार के कदाचार के लिए कठोर उत्तरदायित्व सुनिश्चित किया जाए।
- न्यायालय के विभिन्न पक्षों के बीच बेहतर समन्वय स्थापित किया जाए तथा धैर्यपूर्वक उनकी बात सुनी जाए।
- पीड़ितों एवं साक्षियों के लिए पृथक प्रतीक्षा कक्ष की व्यवस्था की जाए।
- जहाँ संभव हो, न्यायालय की कार्यवाही स्थानीय भाषा में संचालित की जाए।
- विनम्र एवं सम्मानजनक व्यवहार के साथ सहयोगपूर्ण वातावरण सुनिश्चित किया जाए।

6. (क) क्या पीड़ित या साक्षी के रूप में न्यायालय में किसी समय आपको भयभीत या असहज महसूस हुआ?

प्रतिक्रियाएँ :

- हाँ: 17.1%
- नहीं: 82.9%

अधिकांश उत्तरदाताओं (82.9%) ने बताया कि उन्हें न्यायालय में भयभीत या असहज महसूस नहीं हुआ।

(ख) कब, कहाँ और क्यों?

- प्रतिपरीक्षण, आक्रामक प्रश्न पूछे जाने अथवा अपरिचित न्यायालयीन वातावरण के कारण कुछ उत्तरदाताओं ने भय या असहजता महसूस की।
- कुछ उत्तरदाता वरिष्ठ अधिवक्ताओं अथवा विपक्षी पक्ष के दबाव के कारण भयभीत हुए।
- कार्यवाही में विलंब, बार–बार स्थगन तथा मामले के प्रति गंभीरता की कमी ने भी नकारात्मक भावनाओं को बढ़ाया।
- कुछ उत्तरदाताओं ने न्यायालयीन वातावरण को सहयोगपूर्ण पाया और उन्हें किसी प्रकार का भय या असहजता महसूस नहीं हुई।

7. आपके विचार में उस महत्वपूर्ण समय में आपकी रक्षा या सहायता कौन कर सकता है?

प्रतिक्रियाएँ :

- लोक अभियोजक: 12.9%
- न्यायाधीश: 14.3%
- बचाव पक्ष के अधिवक्ता: 7.9%
- पुलिस: 12.1%
- अन्य व्यक्ति/सरकारी विभाग/संगठन/संस्था: 52.9%

आधे से अधिक उत्तरदाताओं का मानना है कि महत्वपूर्ण परिस्थितियों में लोक अभियोजक, न्यायाधीश, बचाव पक्ष के अधिवक्ता या पुलिस के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति अथवा संस्थाएँ सबसे अधिक सहायक हो सकती हैं।

8. क्या आप नए कानून के अंतर्गत साक्षी संरक्षण योजना के बारे में जानते हैं? क्या न्यायाधीश ने आपको इसके अंतर्गत संरक्षण, पुनर्वास, क्षतिपूर्ति आदि के अधिकारों के बारे में अवगत कराया है?

प्रतिक्रियाएँ :

- हाँ: 19.3%
- नहीं: 80.7%

एक महत्वपूर्ण बहुमत (80.7%) साक्षी संरक्षण योजना के संबंध में जागरूक नहीं है अथवा उन्हें न्यायाधीश द्वारा इस योजना के संबंध में जानकारी नहीं दी गई है।

9. न्यायालय में पीड़ित या साक्षी के रूप में आपको किन चुनौतियों का सामना करना पड़ता है?

- अनेक उत्तरदाताओं ने बताया कि उन्हें कोई बड़ी चुनौती नहीं है।
- सामान्य रूप से सामने आने वाली चुनौतियाँ निम्नलिखित हैं:
  - ✓ बार–बार एवं अनावश्यक स्थगन।
  - ✓ अधिवक्ताओं द्वारा मामलों के प्रति गंभीरता एवं उत्तरदायित्व की कमी।
  - ✓ संवाद एवं मामले की प्रगति की जानकारी का अभाव।
  - ✓ कार्यवाही में विलंब के कारण भावनात्मक, मानसिक एवं आर्थिक कठिनाइयाँ।

- ✓ पीड़ितों एवं साक्षियों के लिए पृथक प्रतीक्षा कक्ष का अभाव।
- ✓ पुलिस एवं विपक्षी अधिवक्ता का दबाव।
- ✓ सार्वजनिक लज्जा एवं तनाव, विशेषकर पीड़ादायक घटनाओं को बार–बार स्मरण करने के कारण।
- ✓ लंबी न्यायिक प्रक्रिया एवं मामलों के निपटारे में अत्यधिक विलंब।
- ✓ कुछ उत्तरदाताओं ने न्यायालयीन कार्यवाही को सहयोगपूर्ण एवं सहायक बताया।

10. आपराधिक न्याय प्रणाली को अधिक सुदृढ़ तथा पीड़ित एवं वादकारी के अनुकूल बनाने के लिए कोई अन्य सुझाव अथवा प्रतिक्रिया?

- ✓ मामलों का शीघ्र एवं समयबद्ध विचारण तथा निस्तारण सुनिश्चित किया जाए।
- ✓ पीड़ितों के लिए कानूनी प्रक्रियाओं को सरल बनाया जाए तथा बेहतर मार्गदर्शन एवं सहायता प्रदान की जाए।
- ✓ विलंब एवं व्यावसायिक कदाचार के लिए अधिक उत्तरदायित्व सुनिश्चित किया जाए।
- ✓ पृथक प्रतीक्षा कक्ष तथा उचित पीड़ित संरक्षण की व्यवस्था की जाए।
- ✓ कानूनी अधिकारों एवं कल्याणकारी योजनाओं के संबंध में अधिक जागरूकता उत्पन्न की जाए।
- ✓ पुलिस, अभियोजन एवं न्यायालय के बीच बेहतर समन्वय स्थापित किया जाए।
- ✓ सभी संबंधित पक्षों द्वारा मैत्रीपूर्ण एवं सम्मानजनक व्यवहार सुनिश्चित किया जाए।
- ✓ समय–समय पर कानूनी शिक्षा एवं जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किए जाएँ।
- ✓ यह सुनिश्चित किया जाए कि प्रत्येक मामले का निस्तारण उचित समय–सीमा के भीतर हो।
- ✓ कुछ उत्तरदाता वर्तमान व्यवस्था से संतुष्ट थे और उन्होंने कोई अतिरिक्त सुझाव नहीं दिया।

न्यायालयीन कार्यवाही से प्राप्त प्रतिक्रियाएँ यह संकेत देती हैं कि अधिकांश लोग न्याय प्रणाली को सकारात्मक दृष्टि से देखते हैं। 86.4 % उत्तरदाताओं ने बताया कि वे कानूनी प्रक्रियाओं को समझते हैं,

66.4 %को लगता है कि न्यायाधीश उनकी बात सुनते हैं तथा 69.3% ने बताया कि न्यायाधीश न्यायालयीन कार्यवाही को स्पष्ट एवं सरल भाषा में समझाते हैं। आधे से अधिक उत्तरदाताओं ने न्यायाधीशों एवं अधिवक्ताओं को संवेदनशील तथा सहानुभूतिपूर्ण माना और अनेक उत्तरदाताओं ने न्यायालय में भय या असहजता महसूस न करने की बात कही। हालाँकि, पीड़ितों के संरक्षण एवं सहायता के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण समस्याएँ भी सामने आती हैं। 80.7% उत्तरदाता साक्षी संरक्षण योजना के संबंध में जागरूक नहीं हैं। इसके अतिरिक्त, अनेक उत्तरदाताओं ने न्यायिक विलंब, बार–बार स्थगन, संवाद की कमी तथा भावनात्मक तनाव जैसी समस्याओं का उल्लेख किया। उत्तरदाताओं ने कानूनी भाषा को सरल बनाने, मामलों के शीघ्र निस्तारण, न्यायिक पारदर्शिता बढ़ाने तथा संस्थागत उत्तरदायित्व सुनिश्चित करने का सुझाव दिया है। समग्र रूप से, न्याय प्रणाली को सुलभ एवं सम्मानजनक माना गया है, किंतु इसकी कार्यकुशलता, पीड़ित संरक्षण तथा प्रक्रियात्मक संवेदनशीलता में सुधार की आवश्यकता बनी हुई है, ताकि न्याय व्यवस्था अधिक प्रभावी, संवेदनशील एवं पीड़ित–अनुकूल बन सके। नालसा से

नालसा से

"यौन हमले/अन्य अपराधों की महिला पीड़िताओं/उत्तरजीवियों के लिए मुआवजा योजना – 2018"

राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण

12/11, Jam Nagar House, Shahjahan Road, New Delhi
Website: www.nalsa.gov.in e-mail: nalsa-dla@nic.in

पृष्ठभूमि

भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने रिट याचिका (सिविल) संख्या 565/2012, शीर्षक निपुण सक्सेना बनाम भारत संघ, में यह मत व्यक्त किया कि: *"यह उचित होगा कि राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण (NALSA) लगभग 4 या 5 सदस्यों की एक समिति गठित करे, जो विद्वान न्याय–मित्र द्वारा प्रस्तुत सुझावों को ध्यान में रखते हुए यौन अपराधों और एसिड हमलों के पीड़ितों के लिए पीड़ित क्षतिपूर्ति संबंधी आदर्श नियम तैयार कर सके। विद्वान न्याय–मित्र तथा विद्वान सॉलिसिटर जनरल ने आवश्यकता पड़ने पर समिति की सहायता करने की पेशकश की है। राष्ट्रीय महिला आयोग की अध्यक्ष अथवा अध्यक्ष द्वारा नामित व्यक्ति को समिति से संबद्ध किया जाना चाहिए।"*

उपरोक्त के दृष्टिगत, राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण (NALSA) ने आदर्श योजना तैयार करने के लिए निम्नलिखित सदस्यों वाली एक समिति का गठन किया:

सुश्री पिंकी आनंद,
अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल

श्री राकेश श्रीवास्तव,
सचिव, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, भारत सरकार

श्री टी.वी.एस.एन. प्रसाद,
अतिरिक्त सचिव, गृह मंत्रालय, भारत सरकार

सुश्री इंदिरा जयसिंह,
वरिष्ठ अधिवक्ता, भारत का सर्वोच्च न्यायालय

श्री आलोक अग्रवाल,
सदस्य सचिव, राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण

श्री सुरिंदर एस. राठी,
निदेशक, राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण

सुश्री अंजू राठी राणा,
संयुक्त सचिव, विधि कार्य विभाग, विधि एवं न्याय मंत्रालय, भारत सरकार

श्री के.एल. शर्मा,
संयुक्त सचिव, राष्ट्रीय महिला आयोग

सुश्री भारती अली,
सह–निदेशक, हक़: बाल अधिकार केंद्र (एचएक्यू: सेंटर फॉर चाइल्ड राइट्स)

समिति ने कई दौर की बैठकें आयोजित कीं और यह निर्णय लिया गया कि यौन उत्पीड़न/यौन हमले के पीड़ितों के लिए मौजूदा पीड़ित क्षतिपूर्ति योजना के अंतर्गत एक पृथक "अध्याय" अथवा "उप–योजना" तैयार की जाए।

समिति ने पीड़ित क्षतिपूर्ति योजना के भाग–II का प्रारूप तैयार किया तथा विभिन्न हितधारकों से उक्त प्रारूप पर सुझाव/टिप्पणियाँ आमंत्रित कीं। प्राप्त सुझावों एवं टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए समिति ने यौन हमले/अन्य अपराधों से प्रभावित महिला पीड़ितों/उत्तरजीवियों के लिए क्षतिपूर्ति योजना को अंतिम रूप दिया और इसे 24.04.2018 को भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया।

10.05.2018 को माननीय पीठ के समक्ष प्रस्तुतियाँ की गईं तथा अन्य हितधारकों को भी सुना गया। सुनवाई के दौरान प्राप्त अतिरिक्त सुझावों को भी योजना में सम्मिलित किया गया और 11.05.2018 को अंतिम योजना भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई।

उसी दिन, NALSA तथा विद्वान न्याय–मित्र (Amicus Curiae) को सुनने के पश्चात माननीय पीठ ने इस योजना को स्वीकार कर लिया तथा सभी राज्य सरकारों/केंद्रशासित प्रदेश प्रशासनों को अपने–अपने राज्यों/केंद्रशासित प्रदेशों में इसे लागू करने का निर्देश दिया।

(सुरिंदर एस. राठी)
निदेशक, NALSA

भाग–II

इस भाग में निहित अध्याय को "यौन हमले/अन्य अपराधों की महिला पीड़िताओं/उत्तरजीवियों के लिए मुआवजा योजना" कहा जाएगा।

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	विषय–वस्तु	पृष्ठ संख्या
1.	संक्षिप्त नाम और प्रारंभ	**2**
2.	परिभाषाएँ	**2-3**
3.	महिला पीड़ित मुआवजा निधि	**3-4**
4.	मुआवजे के लिए पात्रता	**4**
5.	एसएलएसए या डीएलएसए के समक्ष आवेदन करने की प्रक्रिया	**4**
6.	आवेदन दाखिल करने का स्थान	**4**
7.	राज्य या जिला विधिक सेवा प्राधिकरण द्वारा प्रदान की जा सकने वाली राहतें	**5**
8.	मुआवजा प्रदान करते समय विचार किए जाने वाले कारक	**6-7**
9.	मुआवजा प्रदान करने की प्रक्रिया	**7**
10.	आदेश को अभिलेख पर रखा जाना	**7**
11.	मुआवजे के वितरण की विधि	**8**
12.	पीड़िता को अंतरिम राहत	**8**
13.	पीड़िता या उसके आश्रितों को प्रदान किए गए मुआवजे की वसूली	**8**
14.	आश्रितता प्रमाण–पत्र	**9**
15.	नाबालिग पीड़िताएँ	**9**
16.	सीमाएँ	**9**
17.	अपील	**9**
18.	निरसन एवं बचत	**9**
19.	अपराधों की महिला पीड़िताओं पर लागू अनुसूची	**10-11**
20.	प्रपत्र–I	**12**

1. संक्षिप्त नाम और प्रारंभ

(1) इस अध्याय को "यौन हमले/अन्य अपराधों से प्रभावित महिला पीड़ितों/उत्तरजीवियों के लिए क्षतिपूर्ति योजना, 2018" कहा जा सकता है।
(2) यह योजना भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आदेशित तिथि से लागू होगी।
(3) यह योजना उन पीड़ितों तथा उनके आश्रितों पर लागू होगी, जिन्हें किए गए अपराध के परिणामस्वरूप, यथास्थिति, हानि या क्षति हुई है अथवा चोट पहुँची है तथा जिन्हें पुनर्वास की आवश्यकता है।''

2. परिभाषाएँ

(1) इस अध्याय में, जब तक संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो–

(a) '"संहिता"' से तात्पर्य ''दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का अधिनियम संख्या 2)'' अथवा "भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023" से है।
(b) '"आश्रित"' में पीड़ित के पति, पिता, माता, दादा–दादी/नाना–नानी, अविवाहित पुत्री तथा नाबालिग बच्चे शामिल होंगे। आश्रितों का निर्धारण ''राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण या जिला विधिक सेवा प्राधिकरण'' द्वारा संबंधित क्षेत्र के ''उप–मंडल मजिस्ट्रेट, थाना प्रभारी (SHO) अथवा अन्वेषण अधिकारी (IO) की रिपोर्ट के आधार पर किया जाएगा। यह निर्धारण आश्रितों द्वारा शपथ–पत्र के माध्यम से प्रस्तुत अभिलेखों/सामग्री के आधार पर अथवा प्राधिकरण द्वारा स्वयं की गई जाँच के आधार पर भी किया जा सकता है।
(c) "जिला विधिक सेवा प्राधिकरण"' से तात्पर्य ''विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 (1987 का अधिनियम संख्या 39) की धारा 9'' के अंतर्गत राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली के किसी जिले के लिए गठित जिला विधिक सेवा प्राधिकरण से है।
(d) "प्रपत्र" से तात्पर्य इस योजना के साथ संलग्न तथा इस अध्याय के लिए लागू प्रपत्र से है।
(e) "निधि" से तात्पर्य राज्य निधि अर्थात् ''राज्य पीड़ित क्षतिपूर्ति योजना के अंतर्गत गठित पीड़ित क्षतिपूर्ति निधि'' से है।
(f) "केंद्रीय निधि" से तात्पर्य ''सीवीसीएफ योजना, 2015'' के अंतर्गत प्राप्त निधियों से है।
(g) "महिला पीड़ित क्षतिपूर्ति निधि" से तात्पर्य राज्य पीड़ित क्षतिपूर्ति निधि तथा केंद्रीय निधि में से ''महिला पीड़ितों को क्षतिपूर्ति के वितरण के लिए पृथक की गई निधि'' से है।
{राज्य पीड़ित क्षतिपूर्ति निधि के अंतर्गत एक पृथक बैंक खाता बनाए रखा जाएगा, जो उक्त बड़ी निधि का एक हिस्सा होगा। इस खाते में भारत सरकार के गृह मंत्रालय (MHA) द्वारा ''निर्भया निधि'' से CVCF योजना के अंतर्गत उपलब्ध कराई गई राशि तथा राज्य पीड़ित क्षतिपूर्ति निधि से प्राप्त राशि रखी जाएगी। इस राशि का उपयोग केवल इस अध्याय के अंतर्गत आने वाले पीड़ितों के लिए किया जाएगा।}''
(h) "सरकार" से तात्पर्य, जहाँ ''राज्य पीड़ित क्षतिपूर्ति योजना या राज्य पीड़ित क्षतिपूर्ति निधि'' का संदर्भ हो, वहाँ ''"राज्य सरकार"' से तथा जहाँ ''केंद्रीय सरकार की पीड़ित क्षतिपूर्ति निधि योजना'' का संदर्भ हो, वहाँ ''"केंद्र सरकार"' से है। इसमें ''केंद्रशासित प्रदेश (UTs) भी शामिल होंगे।

(i) "चोट" से तात्पर्य महिला के शरीर या मन को पहुँचाई गई किसी भी प्रकार की क्षति से है।

(j) "नाबालिग" से तात्पर्य ऐसी बालिका से है, जिसने ''18 वर्ष की आयु पूर्ण नहीं की है।''

(k) "अपराध" से तात्पर्य महिलाओं के विरुद्ध किए गए ऐसे अपराध से है, जो ''भारतीय दंड संहिता, भारतीय न्याय संहिता अथवा किसी अन्य विधि के अंतर्गत दंडनीय'' हो।

(l) "दंड संहिता" से तात्पर्य ''भारतीय दंड संहिता, 1860 (1860 का अधिनियम संख्या 45)'' अथवा ''भारतीय न्याय संहिता, 2023'' से है।

(m) "अनुसूची" से तात्पर्य इस योजना के इस अध्याय/भाग पर लागू अनुसूची से है।

(n) "राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण" से तात्पर्य ''विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 (1987 का अधिनियम संख्या 39) की धारा 6'' के अंतर्गत परिभाषित राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण से है।

(o) "यौन हमले से प्रभावित पीड़ित/उत्तरजीवी" से तात्पर्य ऐसी महिला से है, जिसे किसी यौन अपराध के परिणामस्वरूप मानसिक या शारीरिक क्षति अथवा दोनों प्रकार की क्षति हुई हो। इसमें ''भारतीय दंड संहिता की धारा 376 (क) से (ङ) अथवा ''भारतीय न्याय संहिता, 2023 की धारा 64 (क) से (म), ''भारतीय दंड संहिता की धारा 354 (क) से (घ)'' अथवा ''भारतीय न्याय संहिता, 2023 की धारा 65, 66, 67, 68, 69, 70, 71, 72, 74, 75, 76, 77 और 78'', तथा ''भारतीय दंड संहिता की धारा 509'' अथवा ''भारतीय न्याय संहिता, 2023 की धारा 79'' के अंतर्गत आने वाले अपराध शामिल हैं।

(p) "अन्य अपराधों से प्रभावित महिला पीड़ित/उत्तरजीवी" से तात्पर्य ऐसी महिला से है, जिसे संलग्न अनुसूची में उल्लिखित किसी अपराध के परिणामस्वरूप शारीरिक या मानसिक क्षति हुई हो। इसमें ''भारतीय दंड संहिता की धारा 304–ख'' अथवा ''भारतीय न्याय संहिता, 2023 की धारा 80'', ''भारतीय दंड संहिता की धारा 326–क'' अथवा ''भारतीय न्याय संहिता, 2023 की धारा 124'', तथा ''भारतीय दंड संहिता की धारा 498–क'' अथवा ''भारतीय न्याय संहिता, 2023 की धारा 85'' के अंतर्गत आने वाले अपराध शामिल हैं। ऐसी स्थिति में शारीरिक क्षति अनुसूची में निर्दिष्ट प्रकृति की होनी चाहिए। इसमें उक्त अपराधों के ''प्रयास और दुष्प्रेरण'' भी सम्मिलित होंगे।

(2) अपरिभाषित शब्दों का अर्थ

इस अध्याय में प्रयुक्त ऐसे शब्द और अभिव्यक्तियाँ, जिन्हें यहाँ परिभाषित नहीं किया गया है, उनका वही अर्थ होगा जो उन्हें ''दंड प्रक्रिया संहिता, 1973, भारतीय दंड संहिता, 1860, भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 अथवा भारतीय न्याय संहिता, 2023'' में दिया गया है।

3. महिला पीड़ित क्षतिपूर्ति निधि

(1) एक निधि होगी, जिसे ''"महिला पीड़ित क्षतिपूर्ति निधि"'' कहा जाएगा। इस निधि से राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण अथवा जिला विधिक सेवा प्राधिकरण द्वारा निर्धारित क्षतिपूर्ति की राशि उस ''महिला पीड़ित अथवा उसके आश्रितों'' को प्रदान की जाएगी, जिन्हें किसी अपराध के परिणामस्वरूप हानि या क्षति हुई है तथा जिन्हें पुनर्वास की आवश्यकता है।

(2) "महिला पीड़ित क्षतिपूर्ति निधि" में निम्नलिखित राशियाँ सम्मिलित होंगी।

(क) वर्ष 2015 की ''केंद्रीय पीड़ित क्षतिपूर्ति निधि योजना'' के अंतर्गत प्राप्त अंशदान;

(ख) राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण को ''सहायता–अनुदान'' के रूप में किया गया बजटीय आवंटन, जिसके लिए सरकार द्वारा वार्षिक बजट में आवश्यक प्रावधान किया जाएगा;

(ग) सिविल अथवा आपराधिक न्यायाधिकरण द्वारा इस निधि में जमा करने के लिए आदेशित कोई भी ''हर्जाना राशि'';

(घ) योजना के ''खंड 14'' के अंतर्गत दोषी व्यक्ति अथवा अभियुक्त से वसूल की गई ''क्षतिपूर्ति की राशि''।

(ङ) निधि में प्राप्त होने वाली अन्य राशियाँ

(ङ) राज्य सरकार अथवा केंद्र सरकार द्वारा अनुमोदित ''अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं, राष्ट्रीय संस्थाओं, परोपकारी संस्थाओं, धर्मार्थ संस्थाओं, संगठनों तथा व्यक्तियों'' से प्राप्त दान अथवा अंशदान।

(च) कंपनियों द्वारा ''निगमित सामाजिक उत्तरदायित्व'' के अंतर्गत दिया गया अंशदान।

(3) उक्त निधि का संचालन ''राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण'' द्वारा किया जाएगा।

4. क्षतिपूर्ति प्राप्त करने की पात्रता

महिला पीड़ित अथवा उसके आश्रित, यथास्थिति, उस पर लागू होने वाली ''एक से अधिक योजनाओं'' के अंतर्गत क्षतिपूर्ति प्राप्त करने के पात्र होंगे। तथापि, ''दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 357–ख अथवा भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता की धारा 396'' के संबंध में अन्य योजनाओं के अंतर्गत प्राप्त क्षतिपूर्ति की राशि को बाद में प्रस्तुत किए गए आवेदन पर क्षतिपूर्ति की राशि निर्धारित करते समय ध्यान में रखा जाएगा।

5. राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण अथवा जिला विधिक सेवा प्राधिकरण के समक्ष आवेदन प्रस्तुत करने की प्रक्रिया प्रथम सूचना रिपोर्ट की अनिवार्य सूचना

थाना प्रभारी, पुलिस अधीक्षक अथवा पुलिस उपायुक्त'' द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट के पंजीकरण के तुरंत बाद उसकी इलेक्ट्रॉनिक अथवा मुद्रित प्रति ''राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण अथवा जिला विधिक सेवा प्राधिकरण'' को अनिवार्य रूप से उपलब्ध कराई जाएगी। यह व्यवस्था इस योजना के अंतर्गत आने वाले अपराधों के संबंध में लागू होगी। इनमें ''भारतीय दंड संहिता की धारा 326–क, 354–क से 354–घ, 376–क से 376–ङ, 304–ख और 498–क'' तथा ''भारतीय न्याय संहिता की धारा 124, 74, 75, 76, 78, धारा 63 से 72, धारा 80 और 85'' शामिल हैं। जहाँ इस अनुसूची में वर्णित शारीरिक क्षति हुई हो, वहाँ संबंधित प्रकरण में राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण अथवा जिला विधिक सेवा प्राधिकरण, उपयुक्त मामलों में, ''अंतरिम क्षतिपूर्ति प्रदान करने के उद्देश्य से तथ्यों का प्रारंभिक सत्यापन स्वयं की पहल पर'' कर सकता है।

आवेदन प्रपत्र-I में प्रस्तुत किया जाएगा। इसके साथ ''प्रथम सूचना रिपोर्ट की प्रति अथवा न्यायालय द्वारा संज्ञान लिए गए आपराधिक परिवाद की प्रति'' संलग्न की जाएगी। जहाँ उपलब्ध हो वहाँ ''चिकित्सकीय प्रतिवेदन, मृत्यु प्रमाण–पत्र तथा विचारण समाप्त होने की स्थिति में न्यायालय के निर्णय अथवा अनुशंसा की प्रति'' भी संलग्न की जाएगी।

6. आवेदन प्रस्तुत करने का स्थान

क्षतिपूर्ति के लिए आवेदन अथवा अनुशंसा ''राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण अथवा संबंधित जिला विधिक सेवा प्राधिकरण'' के समक्ष प्रस्तुत की जा सकती है। इसके अतिरिक्त, सभी राज्य विधिक सेवा प्राधिकरणों द्वारा बनाए गए ''ऑनलाइन पोर्टल'' के माध्यम से भी आवेदन प्रस्तुत किया जा सकता है। संबंधित जिला विधिक सेवा प्राधिकरण के सचिव उनके समक्ष प्रस्तुत आवेदन अथवा अनुशंसा पर इस योजना के अनुसार निर्णय करेंगे।

''स्पष्टीकरण:'' अम्ल हमले से प्रभावित पीड़ित के मामले में निर्णय लेने वाला प्राधिकरण ''भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा लक्ष्मी बनाम भारत संघ, रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 129/2006, दिनांक 10.04.2015 के आदेश के अनुसार गठित आपराधिक क्षति क्षतिपूर्ति बोर्ड'' होगा। इसमें संबंधित जिले के ''जिला एवं सत्र न्यायाधीश, जिलाधिकारी, पुलिस अधीक्षक तथा सिविल सर्जन/मुख्य चिकित्सा अधिकारी'' शामिल होंगे।

7. राज्य अथवा जिला विधिक सेवा प्राधिकरण द्वारा प्रदान की जा सकने वाली राहतें

राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण अथवा जिला विधिक सेवा प्राधिकरण पीड़ित अथवा उसके आश्रितों को इस योजना के साथ संलग्न अनुसूची में निर्दिष्ट सीमा तक क्षतिपूर्ति प्रदान कर सकता है।

ACCESS TO JUSTICE FOR ALL NALSA

8. क्षतिपूर्ति निर्धारित करते समय विचार किए जाने वाले कारक

किसी मामले का निर्णय करते समय ''राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण/जिला विधिक सेवा प्राधिकरण'' पीड़ित को हुई हानि अथवा क्षति से संबंधित निम्नलिखित कारकों को ध्यान में रख सकता है।

(1) अपराध की गंभीरता तथा पीड़ित को हुई मानसिक अथवा शारीरिक क्षति या चोट की गंभीरता।

(2) पीड़ित के शारीरिक अथवा मानसिक स्वास्थ्य के उपचार, जिसमें परामर्श भी सम्मिलित है, तथा अंतिम संस्कार और अपराध की जाँच, पूछताछ अथवा विचारण के दौरान यात्रा पर हुए अथवा संभावित व्यय को ध्यान में रखा जाएगा। इसमें भोजन के लिए देय राशि सम्मिलित नहीं होगी।

(3) अपराध के परिणामस्वरूप शिक्षा के अवसर की हुई हानि। इसमें मानसिक आघात, शारीरिक चोट, चिकित्सकीय उपचार, अपराध की जाँच तथा विचारण अथवा किसी अन्य कारण से विद्यालय या महाविद्यालय से अनुपस्थित रहने के कारण हुई शैक्षणिक क्षति भी सम्मिलित होगी।

(4) अपराध के परिणामस्वरूप रोजगार की हुई हानि। इसमें मानसिक आघात, शारीरिक चोट, चिकित्सकीय उपचार, अपराध की जाँच तथा विचारण अथवा किसी अन्य कारण से कार्यस्थल से अनुपस्थित रहने के कारण हुई रोजगार संबंधी क्षति भी सम्मिलित होगी।

(5) यदि पीड़ित और अपराधी के बीच कोई संबंध हो तो उस संबंध की प्रकृति।

(6) यह तथ्य कि अपराध एक बार की पृथक घटना थी अथवा वह किसी अवधि तक लगातार होता रहा।

(7) अपराध के परिणामस्वरूप पीड़ित के गर्भवती होने की स्थिति तथा यह कि उसे ''चिकित्सकीय गर्भसमापन'' कराना पड़ा अथवा बच्चे को जन्म देना पड़ा। ऐसी स्थिति में जन्मे बच्चे के पुनर्वास की आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखा जाएगा।

(8) अपराध के परिणामस्वरूप पीड़ित को ''यौन संचारित रोग'' होने की स्थिति।

(9) अपराध के परिणामस्वरूप पीड़ित के ''मानव प्रतिरक्षी अपूर्णता विषाणु (एचआईवी)'' से संक्रमित होने की स्थिति।

(10) अपराध के परिणामस्वरूप पीड़ित को हुई कोई शारीरिक अथवा अन्य प्रकार की ''विकलांगता''।

(11) जिस पीड़ित के विरुद्ध अपराध किया गया है उसकी ''आर्थिक स्थिति'', ताकि उसके पुनर्वास तथा समाज में पुनः समावेशन की आवश्यकता का निर्धारण किया जा सके।

(12) मृत्यु की स्थिति में मृतका की आयु, उसकी मासिक आय, आश्रितों की संख्या, संभावित जीवन प्रत्याशा, भविष्य में पदोन्नति अथवा आय में वृद्धि की संभावनाएँ तथा अन्य संबंधित परिस्थितियाँ।

(13) कोई अन्य ऐसा कारक, जिसे ''राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण/जिला विधिक सेवा प्राधिकरण'' न्यायसंगत और पर्याप्त समझे।

9. क्षतिपूर्ति प्रदान करने की प्रक्रिया

(1) जहाँ न्यायालय द्वारा ''संहिता की धारा 357–क की उपधारा (2) और/या उपधारा (3)'' अथवा **''भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता की धारा 396 की उपधारा (2) और/या उपधारा (3)''** के अंतर्गत क्षतिपूर्ति प्रदान किए जाने की अनुशंसा की जाती है अथवा कोई पीड़ित या उसका आश्रित ''संहिता की धारा 357–क की उपधारा (4)'' अथवा **''भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता की धारा 396 की उपधारा (4)''** के अंतर्गत अंतरिम क्षतिपूर्ति के लिए राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण अथवा जिला विधिक सेवा प्राधिकरण के समक्ष आवेदन प्रस्तुत करता है, तो प्राधिकरण प्रथम दृष्टया पीड़ित की पहचान तथा क्षतिपूर्ति की आवश्यकता के संबंध में स्वयं को संतुष्ट करेगा। अंतिम क्षतिपूर्ति के संबंध में प्राधिकरण मामले की जाँच करेगा तथा अपराध के परिणामस्वरूप हुई ''हानि अथवा क्षति और पुनर्वास की आवश्यकताओं'' के संबंध में दावे में प्रस्तुत तथ्यों का सत्यापन करेगा। दावे पर निर्णय लेने के लिए आवश्यक कोई अन्य प्रासंगिक जानकारी भी प्राधिकरण द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

''परंतु यह कि'', उचित मामलों में तथा सभी ''अम्ल हमले के मामलों'' में, अपराध किए जाने के पश्चात किसी भी समय राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण के सचिव अथवा जिला विधिक सेवा प्राधिकरण के सचिव, स्वयं की पहल पर अथवा तथ्यों के प्रारंभिक सत्यापन के पश्चात, मामले की परिस्थितियों के अनुसार आवश्यक ''अंतरिम राहत'' प्रदान करने की कार्यवाही कर सकते हैं।

(2) संहिता की धारा 357–क की उपधारा (5) अथवा भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता की धारा 396 के अंतर्गत अपेक्षित जाँच को शीघ्र पूरा किया जाएगा। दावा, आवेदन अथवा अनुशंसा प्राप्त होने की तिथि से किसी भी स्थिति में ''60 दिनों से अधिक'' का समय नहीं लिया जाएगा। ''परंतु यह कि'', अम्ल हमले के मामलों में जिला विधिक सेवा प्राधिकरण को मामले की जानकारी प्राप्त होने के ''15 दिनों के भीतर पीड़ित को ₹1,00,000 की राशि'' प्रदान की जाएगी। अंतरिम क्षतिपूर्ति प्रदान करने का आदेश जिला विधिक सेवा प्राधिकरण द्वारा मामले की जानकारी प्राप्त होने के ''7 दिनों के भीतर'' पारित किया जाएगा और राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण द्वारा आदेश पारित होने के ''8 दिनों के भीतर'' क्षतिपूर्ति की राशि प्रदान की जाएगी।

इसके पश्चात ''₹2,00,000 की राशि'' यथाशीघ्र और प्रत्येक स्थिति में प्रथम भुगतान की तिथि से ''दो माह के भीतर'' पीड़ित को प्रदान की जाएगी।

''यह भी प्रावधान है कि'', पीड़ित को इस योजना के अंतर्गत स्वीकार्य कोई अतिरिक्त राशि भी प्रदान की जा सकती है।

(3) मामले पर विचार करने के पश्चात, राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण अथवा जिला विधिक सेवा प्राधिकरण, यथास्थिति, अपने समाधान के आधार पर पीड़ित अथवा उसके आश्रितों को प्रदान की जाने वाली क्षतिपूर्ति की राशि निर्धारित करेगा। इस हेतु योजना के ''खंड 8 में उल्लिखित कारकों'' तथा इस अध्याय के साथ संलग्न ''अनुसूची'' को ध्यान में रखा जाएगा।

तथापि, उचित मामलों में, कारणों को अभिलिखित करते हुए ''अनुसूची में निर्धारित अधिकतम सीमा से अधिक क्षतिपूर्ति'' भी प्रदान की जा सकती है।

इसके अतिरिक्त, यदि पीड़ित ''नाबालिग'' है, तो क्षतिपूर्ति की सीमा इस अध्याय के साथ संलग्न अनुसूची में उल्लिखित राशि से ''50 प्रतिशत अधिक'' मानी जाएगी।

**अम्ल हमले से प्रभावित पीड़ितों को ''प्रधानमंत्री राष्ट्रीय राहत कोष'' से ₹1,00,000 की अतिरिक्त क्षतिपूर्ति भी प्राप्त होगी। इसका प्रावधान भारत सरकार के गृह मंत्रालय के ज्ञापन संख्या ''24013/94/Misc-@2014&CSR&III@GoI@MHA] दिनांक 09.11.2016'' में किया गया है।*

अम्ल हमले से प्रभावित पीड़ितों को ''केंद्रीय पीड़ित क्षतिपूर्ति निधि संबंधी दिशा–निर्देश, 2016'' के अंतर्गत अधिकतम ''₹5,00,000 तक की अतिरिक्त विशेष वित्तीय सहायता'' भी प्राप्त हो सकती है, यदि उनके उपचार का व्यय संबंधित राज्य/केंद्रशासित प्रदेश द्वारा प्रदान की गई क्षतिपूर्ति से अधिक हो। ''ज्ञापन संख्या:'' 24013/94/Misc./2014–CSR&III] गृह मंत्रालय, भारत सरकार।

(4) राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण/जिला विधिक सेवा प्राधिकरण इस योजना के सुचारु क्रियान्वयन के लिए किसी भी ''अभिलेख या दस्तावेज को मंगा सकता है'' तथा संबंधित प्राधिकरण, संस्थान, व्यक्ति, पुलिस, न्यायालय अथवा विशेषज्ञ से आवश्यक सहायता प्राप्त कर सकता है।
(5) यदि विचारण न्यायालय अथवा अपीलीय न्यायालय यह निष्कर्ष देता है कि ''आपराधिक परिवाद तथा लगाए गए आरोप मिथ्या थे', तो विधिक सेवा प्राधिकरण इस योजना के अंतर्गत आंशिक अथवा पूर्ण रूप से प्रदान की गई क्षतिपूर्ति की 'वसूली के लिए विचारण न्यायालय के समक्ष कार्यवाही'' प्रारंभ कर सकता है। ऐसी राशि की वसूली इस प्रकार की जाएगी, मानो वह ''जुर्माने के रूप में अधिरोपित राशि'' हो।

10. आदेश को अभिलेख पर रखा जाना

इस योजना के अंतर्गत अंतरिम अथवा अंतिम क्षतिपूर्ति के संबंध में पारित आदेश की एक प्रति ''विचारण न्यायालय के अभिलेख पर रखी जाएगी'', ताकि विचारण न्यायालय ''संहिता की धारा 357 अथवा भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता की धारा 396'' के अंतर्गत क्षतिपूर्ति के संबंध में उचित आदेश पारित कर सके। आदेश की ''प्रमाणित प्रति'' उस स्थिति में अन्वेषण अधिकारी को भी उपलब्ध कराई जाएगी, जब मामला अभी जाँच के स्तर पर लंबित हो। इसकी एक प्रति पीड़ित अथवा उसके आश्रित को भी, यथास्थिति, प्रदान की जाएगी।

11. क्षतिपूर्ति के वितरण की विधि

(1) प्रदान की गई क्षतिपूर्ति की राशि राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण द्वारा पीड़ित अथवा उसके आश्रितों के ''एकल अथवा संयुक्त नाम से बैंक खाते में जमा'' करके वितरित की जाएगी। यदि पीड़ित का कोई बैंक खाता नहीं है, तो संबंधित जिला विधिक सेवा प्राधिकरण पीड़ित के नाम से बैंक खाता खुलवाने में सहायता करेगा। यदि पीड़ित ''नाबालिग'' है, तो उसके नाम से उसके संरक्षक के साथ संयुक्त बैंक खाता खोला जाएगा। यदि नाबालिग किसी ''बाल देखभाल संस्था'' में रह रहा है, तो बैंक खाता संस्था के अधीक्षक को संरक्षक के रूप में दर्शाते हुए खोला जाएगा। यदि पीड़ित ''विदेशी नागरिक अथवा शरणार्थी'' है, तो क्षतिपूर्ति का भुगतान ''नकद कार्ड'' के माध्यम से किया जा सकता है।

''अंतरिम क्षतिपूर्ति की पूरी राशि'' एकमुश्त उपलब्ध कराई जाएगी। तथापि, अंतिम क्षतिपूर्ति की राशि के संबंध में ''75 प्रतिशत राशि कम से कम तीन वर्ष की अवधि के लिए सावधि जमा'' में रखी जाएगी तथा शेष ''25 प्रतिशत राशि'' पीड़ित अथवा उसके आश्रितों को आवश्यक उपयोग एवं प्रारंभिक व्ययों के लिए उपलब्ध रहेगी।

(2) नाबालिग के मामले में प्रदान की गई क्षतिपूर्ति की ''80 प्रतिशत राशि सावधि जमा खाते में'' जमा की जाएगी। यह राशि उसके ''वयस्क होने की आयु प्राप्त करने के बाद ही'' निकाली जा सकेगी और किसी भी स्थिति में जमा की तिथि से तीन वर्ष पूर्व नहीं निकाली जा सकेगी।

''परंतु यह कि'', अपवादात्मक परिस्थितियों में लाभार्थी की ''शैक्षणिक, चिकित्सकीय अथवा अन्य अत्यावश्यक आवश्यकता'' के लिए राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण/जिला विधिक सेवा प्राधिकरण के विवेकानुसार सावधि जमा राशि में से धनराशि निकाली जा सकती है।

(3) यदि राशि ''सावधि जमा'' के रूप में रखी गई है, तो उस पर प्राप्त ब्याज बैंक द्वारा प्रत्येक माह सीधे पीड़ित अथवा उसके आश्रितों के ''बचत खाते में जमा'' किया जाएगा। लाभार्थी इस ब्याज की राशि का उपयोग अथवा आहरण कर सकता हैं।

12. पीड़ित को अंतरिम राहत

राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण अथवा जिला विधिक सेवा प्राधिकरण, यथास्थिति, ''पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी से नीचे के पद का न होने वाले पुलिस अधिकारी अथवा संबंधित क्षेत्र के मजिस्ट्रेट के प्रमाण–पत्र'', अथवा पीड़ित/आश्रितों द्वारा प्रस्तुत आवेदन के आधार पर अथवा ''स्वतः संज्ञान लेते हुए'', पीड़ित की पीड़ा को कम करने के लिए तत्काल ''प्राथमिक उपचार अथवा निःशुल्क चिकित्सकीय सुविधा'' उपलब्ध कराने का आदेश दे सकता है। इसके अतिरिक्त, आवश्यक समझी जाने वाली कोई अन्य अंतरिम राहत, जिसमें ''अंतरिम आर्थिक क्षतिपूर्ति'' भी शामिल है, प्रदान की जा सकती है।
'परंतु यह कि'', राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण जिला विधिक सेवा प्राधिकरण को क्षतिपूर्ति के लिए आवेदन प्राप्त होते ही, जिला विधिक सेवा प्राधिकरण के सचिव अथवा राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण के सदस्य–सचिव द्वारा ''राष्ट्रीयकृत बैंक से प्राप्त पूर्व–लोडेड नकद कार्ड'' के माध्यम से पीड़ित को तत्काल ''₹5,000'' की राशि प्रदान की जाएगी। मामले की परिस्थितियों के अनुसार यह राशि ''₹10,000 तक'' हो सकती है।
यह भी प्रावधान है कि'', प्रदान की जाने वाली अंतरिम राहत इस अध्याय पर लागू अनुसूची के अनुसार अधिकतम देय क्षतिपूर्ति की ''25 प्रतिशत से कम नहीं होगी'' और यह राशि पीड़ित को ''पूर्ण रूप से'' प्रदान की जाएगी।
इसके अतिरिक्त यह प्रावधान है कि'', अम्ल हमले के मामलों में राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण जिला विधिक सेवा प्राधिकरण को मामले की जानकारी प्राप्त होने के ''15 दिनों के भीतर पीड़ित को ₹1,00,000'' की राशि प्रदान की जाएगी। अंतरिम क्षतिपूर्ति प्रदान करने का आदेश राज्य विधिक सेवा प्राधिकरणधजिला विधिक सेवा प्राधिकरण द्वारा मामले की जानकारी प्राप्त होने के 7 दिनों के भीतर'' पारित किया जाएगा और राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण द्वारा आदेश पारित होने के 8 दिनों के भीतर'' क्षतिपूर्ति की राशि प्रदान की जाएगी।
इसके पश्चात पीड़ित को ₹2,00,000 की अतिरिक्त राशि'' यथाशीघ्र तथा प्रत्येक स्थिति में ''दो माह के भीतर'' प्रदान की जाएगी।

13. पीड़ित अथवा उसके आश्रितों को प्रदान की गई क्षतिपूर्ति की वसूली

संहिता की ''धारा 357–क की उपधारा (3)'' अथवा भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता की ''धारा 396 की उपधारा (3)'' के प्रावधानों के अधीन, राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण उचित मामलों में उस व्यक्ति अथवा व्यक्तियों से क्षतिपूर्ति की राशि वसूल करने के लिए सक्षम न्यायालय के समक्ष कार्यवाही प्रारंभ कर सकता है, जिसने अपराध करके पीड़ित अथवा उसके आश्रितों को हानि या क्षति पहुँचाई है। इस प्रकार वसूल की गई राशि ''महिला पीड़ित क्षतिपूर्ति निधि'' में जमा की जाएगी।

14. आश्रितता प्रमाण–पत्र

आश्रितता प्रमाण–पत्र जारी करने के लिए अधिकृत प्राधिकारी द्वारा उक्त प्रमाण–पत्र 15 दिनों की अवधि के भीतर जारी किया जाएगा। किसी भी स्थिति में इस अवधि को आगे नहीं बढ़ाया जाएगा।

परंतु यह कि, यदि 15 दिनों की अवधि समाप्त होने के बाद भी आश्रितता प्रमाण–पत्र जारी नहीं किया जाता है, तो राज्य विधिक सेवा प्राधिकरणधजिला विधिक सेवा प्राधिकरण ''दावेदार से प्राप्त शपथ–पत्र के आधार पर'' कार्यवाही आगे बढ़ा सकता है।

15. नाबालिग पीड़ित

यदि पीड़ित ''नाबालिग अनाथ'' है तथा उसके माता–पिता अथवा कोई विधिक संरक्षक नहीं है, तो तत्काल राहत अथवा अंतरिम क्षतिपूर्ति की राशि उस बच्चे के ''बैंक खाते में जमा'' की जाएगी। यह बैंक खाता उस ''बाल देखभाल संस्था के अधीक्षक के संरक्षकत्व में'' खोला जाएगा, जहाँ बच्चा रह रहा है। ऐसी संस्था उपलब्ध न होने की स्थिति में, यथास्थिति, ''आहरण एवं संवितरण अधिकारी अथवा उप–मंडल मजिस्ट्रेट'' के संरक्षकत्व में बैंक खाता खोला जाएगा।

16. परिसीमा

इस योजना के अंतर्गत पीड़ित अथवा उसके आश्रित द्वारा ''संहिता की धारा 357–क की उपधारा (4) अथवा ''भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता की धारा 396 की उपधारा (4)'' के अंतर्गत किया गया कोई भी दावा ''अपराध की घटना की तिथि अथवा विचारण की समाप्ति की तिथि से 3 वर्ष की अवधि के पश्चात'' स्वीकार नहीं किया जाएगा।

तथापि, उचित मामलों में इस संबंध में आवेदन प्रस्तुत किए जाने पर तथा कारणों को अभिलिखित करते हुए ''राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण/जिला विधिक सेवा प्राधिकरण'' तीन वर्ष की अवधि के पश्चात हुए विलंब को क्षमा कर सकता है।

17. अपील

यदि पीड़ित अथवा उसके आश्रित जिला विधिक सेवा प्राधिकरण के सचिव द्वारा प्रदान की गई क्षतिपूर्ति की राशि से संतुष्ट नहीं हैं, तो वे आदेश प्राप्त होने की तिथि से 30 दिनों के भीतर जिला विधिक सेवा प्राधिकरण के ''अध्यक्ष'' के समक्ष अपील प्रस्तुत कर सकते हैं।

परंतु यह कि उचित मामलों में अपील प्रस्तुत करने में हुए विलंब को अपीलीय प्राधिकारी, इस संबंध में प्रस्तुत आवेदन पर तथा कारणों को अभिलिखित करते हुए, ''क्षमा कर सकता है।''

18. निरसन और संरक्षण

(1) यदि इस अध्याय में महिलाओं को पीड़ित क्षतिपूर्ति प्रदान किए जाने से संबंधित किसी विषय पर कोई प्रावधान नहीं किया गया है, तो उस विषय पर ''राज्य की पीड़ित क्षतिपूर्ति योजना'' के प्रावधान लागू होंगे।

(2) इस योजना की कोई भी बात पीड़ितों अथवा उनके आश्रितों को अपराध करने वाले व्यक्ति अथवा उसके लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी किसी अन्य व्यक्ति के विरुद्ध ''सिविल वाद अथवा दावा'' प्रस्तुत करने से नहीं रोकेगी।

स्पष्टीकरण: यह स्पष्ट किया जाता है कि यह अध्याय ''लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 (पॉक्सो अधिनियम)'' के अंतर्गत आने वाले नाबालिग पीड़ितों पर लागू नहीं होगा। ऐसे नाबालिग पीड़ितों से संबंधित क्षतिपूर्ति के मामलों का निस्तारण केवल ''पॉक्सो अधिनियम, 2012 की धारा 33(8)'' तथा ''पॉक्सो नियम, 2012 के नियम 7'' के अंतर्गत संबंधित ''विशेष न्यायालय'' द्वारा किया जाएगा।

अपराधों की महिला पीड़िताओं पर लागू अनुसूची

क्रं0	हानि या चोट का विवरण	मुआवजे की न्यूनतम सीमा	मुआवजे की अधिकतम सीमा
1.	जीवन की हानि	₹5 लाख	₹10 लाख
2.	सामूहिक बलात्कार	₹5 लाख	₹10 लाख
3.	बलात्कार	₹4 लाख	₹7 लाख
4.	अप्राकृतिक यौन हमला	₹4 लाख	₹7 लाख
5.	शरीर के किसी अंग या उसके हिस्से की ऐसी क्षति जिसके परिणामस्वरूप 80% या उससे अधिक स्थायी दिव्यांगता हो	₹2 लाख	₹5 लाख
6.	शरीर के किसी अंग या उसके हिस्से की ऐसी क्षति जिसके परिणामस्वरूप 40% से अधिक और 80% से कम स्थायी दिव्यांगता हो	₹2 लाख	₹4 लाख
7.	शरीर के किसी अंग या उसके हिस्से की ऐसी क्षति जिसके परिणामस्वरूप 20% से अधिक और 40% तक स्थायी दिव्यांगता हो	₹1 लाख	₹3 लाख
8.	शरीर के किसी अंग या उसके हिस्से की ऐसी क्षति जिसके परिणामस्वरूप 20% तक स्थायी दिव्यांगता हो	₹1 लाख	₹2 लाख
9.	गंभीर शारीरिक चोट या ऐसी कोई मानसिक चोट जिसके लिए उपचार आवश्यक हो	₹1 लाख	₹2 लाख
10.	भ्रूण की हानि अर्थात हमले या हमले के परिणामस्वरूप गर्भपात या प्रजनन क्षमता की हानि	₹2 लाख	₹3 लाख
11.	गर्भावस्था पर हमला होने की स्थिति में	₹3 लाख	₹4 लाख
12.	जलाने (Burning) की पीड़िताएँ		
a.	चेहरे के विकृत होने की स्थिति में	₹7 लाख	₹8 लाख
b.	50% से अधिक की चोट होने की स्थिति में	₹5 लाख	₹8 लाख
c.	50% से कम की चोट होने की स्थिति में	₹3 लाख	₹7 लाख
d.	20% से कम की चोट होने की स्थिति में	₹2 लाख	₹3 लाख
13.	तेज़ाब हमले की पीड़िताएँ		
a.	चेहरे के विकृत होने की स्थिति में	₹7 लाख	₹8 लाख

b.	50% से अधिक की चोट होने की स्थिति में	₹5 लाख	₹8 लाख
c.	50% से कम की चोट होने की स्थिति में	₹3 लाख	₹5 लाख
d.	20% से कम की चोट होने की स्थिति में	₹3 लाख	₹4 लाख

नोटः यदि यौन हमले/तेज़ाब हमले की कोई महिला पीड़िता इस अनुसूची की एक या एक से अधिक श्रेणियों के अंतर्गत आती है, तो वह मुआवजे की संयुक्त राशि के लिए विचार किए जाने की हकदार होगी।

न्याय सब के लिए
ACCESS TO JUSTICE FOR ALL
NALSA

प्रपत्र–I

यौन हमले/अन्य अपराधों की महिला पीड़िताओं/उत्तरजीवियों के लिए मुआवजा योजना, 2018 के अंतर्गत मुआवजा प्रदान करने हेतु महिलाओं के लिए अंतरिम/अंतिम राहत हेतु आवेदन

क्रं0	विवरण	
1	आवेदक पीड़िता/पीड़िताओं या उसके/उनके आश्रितों का नाम	
2	पीड़िता/पीड़िताओं या उसके/उनके आश्रितों की आयु	
3	(क) पिता का नाम (ख) माता का नाम (ग) पति/पति का नाम	
4	पीड़िता/पीड़िताओं या उसके/उनके आश्रितों का पता	
5	घटना की तारीख एवं समय	
6	क्या एफआईआर दर्ज की गई है?	
7	क्या चिकित्सीय परीक्षण किया गया है? यदि हाँ, तो चिकित्सीय रिपोर्ट/मृत्यु प्रमाण–पत्र/पी.एम. रिपोर्ट संलग्न करें।	
8	यदि विचारण लंबित है तो उसकी स्थिति। यदि विचारण समाप्त हो गया है, तो निर्णय एवं सजा संबंधी आदेश की प्रति संलग्न करें।	
9	क्या आवेदक को विचारण न्यायालय अथवा किसी अन्य सरकारी एजेंसी द्वारा कोई मुआवजा प्रदान किया गया है? यदि हाँ, तो उसका विवरण दें।	
10	वित्तीय व्यय/हुई हानि का विवरण दें।	
11	क्या आपने अपराधी के विरुद्ध कोई सिविल वाद/दावा दायर किया है? यदि हाँ, तो विवरण दें। पीड़िता/आश्रित के हस्ताक्षर।	

****